डिस्टैंस ऐजुकेशन विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

कक्षा : बी.ए. भाग-2 (हिन्दी) *सैमेस्टर-4*
पत्र : हिन्दी साहित्य *एकांश संख्या : 2*
माध्यम : हिन्दी

पाठ नं.

2.1 : उपन्यास का स्वरूप, विकास, लेखक परिचय, कथावस्तु
2.2 : पात्र तथा चरित्र चित्रण
2.3 : उपन्यास का परिवेश और संवाद
2.4 : उपन्यास की संरचना और उद्देश्य
2.5 : तौलिये, औरंगजेब की आखिरी रात
2.6 : ग्राम, ये मेरी मातृभूमि है
2.7 : कछुआ धर्म, साहित्य का महत्व

Department website : www.pbidde.org

बी.ए. भाग–द्वितीय **हिन्दी पत्र : हिन्दी साहित्य**
सैसेस्टर-IV

पाठ संख्या : 2.1 **लेखिका : डा. हरिसिमरन कौर**

हिन्दी उपन्यासः स्वरूप एवं विकास

प्रिय विद्यार्थी,

पाठयक्रम का यह भाग आपके पाठयक्रम में निर्धारित उपन्यास 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' से संबंधित हैं, पिछले वर्ष आपको हिन्दी उपन्यास परम्परा से परिचित कराया गया था। हिन्दी उपन्यास का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। इस विद्या का आरंभ 19वीं शताब्दी के प्रथम दशक में हुआ। हिन्दी उपन्यास लेखन के प्रथम चरण में तिलस्मी, जासूसी एवं ऐययारी उपन्यास की रचना हुई। सन 1877 में श्रद्धाराम फिल्लौरी ने 'भाग्यवती' नामक उपन्यास की रचना की। हिन्दी के कुछ विद्वान इसे हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं। मुंशी प्रेमचन्द के आगमन से हिन्दी उपन्यास को एक नया आयाम मिला। उपन्यास की एक निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। यह एक गद्य विद्या है जो जीवन के यथार्थ को बड़ी निकटता से उभारती है। मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं उनके अनुसार 'मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्रमात्र समझता हूं– मानव जीवन पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोजना ही उपन्यास के मूल तत्व हैं'

उपन्यास विद्या का जन्म पश्चिम में हुआ किसी भी उपन्यास में निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक माना जाता हैः–

- किसी एक घटना का वर्णन,
- घटना का किसी पात्र से संबंध,
- घटना का किसी स्थान या समय से सम्बन्ध,
- घटना में वर्णित पात्रों में परस्पर संवाद,
- घटना को कथा में प्रस्तुत करने का ढंग और
- रचना के पीछे लेखक का उद्देश्य।

उपन्यास में कुछ विशेष तत्वों का होना भी जरूरी होता हैः–

1. कथावस्तु 2. पात्र या चरित्र चित्रण 3. देशकाल या परिवेश 4. संवाद 5. भाषा शैली तथा 6. उद्देश्य। उपन्यास में जिस घटना का वर्णन किया जाता है उसे कथावस्तु कहते हैं। कथावस्तु के स्वाभाविक विकास के लिए कथा का श्रृंखलाबद्ध होना आवश्यक होता है। इस कथावस्तु का आधार कोई भी सामाजिक घटना होती है जिसे लेखक अपने ढंग से प्रस्तुत करता

है। उपन्यास की कथा पात्रों के माध्यम से विकसित होती है। इन पात्रो के चरित्र–चित्रण के द्वारा लेखक विभिन्न घटनाओं, समस्याओं और उद्देश्यों को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। उपन्यास मे वर्णित देश काल अथवा परिवेश का विशेष महत्व होता है। लेखक को इस परिवेश से पूरी तरह परिचित होना चाहिए। कथावस्तु मे आया परिवेश जितना स्वाभाविक और यथार्थ होगा, उपन्यास भी उतना ही विश्वसनीय प्रतीत होगा। उपन्यास की भाषा–शैली एवं संवाद की बनावट संरचना–शिल्प के अन्तर्गत आती है। प्रत्येक लेखक की लेखन विधि अपनी होती है जिस पर भाषा का प्रयोग एवं संवाद–योजना निर्भर करती है। शैली का अर्थ है – लिखने का ढंग, उपन्यास में संवादों के माध्यम से कथा विकसित होती है। किसी भी रचना का एक उद्देश्य अवश्य होता है और उस रचना द्वारा दिए गए संदेश का सामाजिक एवं साहित्यिक मूल्यांकन करने के बाद उसका महत्व स्पष्ट होता है।

हिन्दी उपन्यास से संबंधित अध्ययन करने से पहले यह जानना आवश्यक होगा कि इस विद्या का विकास–क्रम क्या है। हिन्दी उपन्यास का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। इसका आरंभ भारतेन्दु काल में हुआ। लाला श्रीनिवासहास की रचना 'परीक्षा गुरू' को हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। हिन्दी उपन्यास के विकास में मुंशी प्रेमचन्द का विशेष योगदान है, इन्हीं को आधार मान कर उपन्यास के विकास–क्रम को तीन भागों में बांटा जाता है। पहला काल प्रेमचन्द एवं हिन्दी उपन्यास उपशीर्षक से है। प्रेमचन्द से पहले हिन्दी में दो प्रकार के उपन्यास लिखे गए – मनोरंजन की दृष्टि से लिखे गए तिलस्मी, ऐयारी और जासूसी उपन्यास और दूसरे संदेश प्रधान। आरंभ के उपन्यासकारों में देवकीनंद न खत्री, किशोरी लाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी तथा रामलाल वर्मा मुख्य हैं। इन उपन्यासों में विचित्र घटनाओं तथा प्रेम कथाओं के माध्यम से चमत्कार एवं कौतुहल उत्पन्न करने का प्रयास किया गया। कुछ उपन्यासों में सामाजिक घटनाओ के उल्लेख के माध्यम से संदेश भी दिए गए। बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा गांगाप्रसाद गुप्त आदि मुख्य हैं। इस युग के उपन्यासों में आदर्शवाद के साथ भावुकता तथा भारतीय आदर्शों को प्रस्तुत किया गया।

दूसरे उपशीर्षक के अन्तर्गत प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास को रखा गया। मुंशी प्रेमचन्द का आगमन उपन्यास के विकासक्रम में एक नए युग का सूत्रपात करता है। इन्होनें पहली बार साहित्य में मानव जीवन के यथार्थ को महत्व दिया। इनके उपन्यासों में सामाजिक कुरीतियो, राष्ट्रीय भावनाओं, ग्रामीण जीवन की समस्याओं आदि का विशेष चित्रण हुआ। स्वाभाविक एवं दैनिक व्यवहार की भाषा में लिखे गए उपन्यासों में प्रेमा, वरदान, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, काया कल्प, निर्मला एवं गोदान प्रसिद्ध हैं। इस युग के कुछ अन्य उपन्यासकार हैं – विश्वेश्वर नाथ शर्मा, पांडेय बेचन शर्मा, उग्र, चतुरसेन शास्त्री और

जयशंकर प्रसाद—1 प्रेमचन्द युग में उपन्यास लेखन की दो शैलियां विकसित हुई — प्रेमचन्द शैली तथा प्रसाद शैली। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में घटनाओं को अधिक महत्व दिया और प्रसाद ने मानव मन के विश्लेषण पर बल दिया। तीसरे उपशीर्षक में प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास को स्थान दिया जाता है। प्रेमचन्द के बाद बहुत से लेखकों ने धार्मिक अंध विश्वासों, सामाजिक रूढ़ियों और आर्थिक शोषण को अपने उपन्यासों में चित्रित किया। इस समय के मुख्य उपन्यासकार हैं यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृतराय, भीष्म साहनी, मोहन राकेश तथा राजेन्द्र यादव। इस समय के कुछ अन्य उपन्यासकारों ने मानव मन को कथा का आधार बना कर व्यक्ति की मानसिक समस्याओं पर विचार किया। इन्होंने मानवमन की अवचेतन क्रियाओं एवं मानसिक ग्रंथियों को कथा का आधार बना कर पात्रों का चरित्र—चित्रण प्रस्तुत किया। इसी तरह कुछ लेखकों ने किसी क्षेत्र या अंचल विशेष को कथा का आधार बनाकर उस क्षेत्र के रहन सहन, आचार विचार तथा भाषा आदि का विशेष वर्णन किया। हिन्दी के कुछ प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास हैं — मैला आंचल, परती परिकथा, सागर लहरें तथा मनुष्य, कब तक पुकारूं और आधा गांव आदि—1 इसी समय में कुछ ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गए जिनमें दिव्या, सिंह सेनापति और मुर्दों का टीला मुख्य है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि उपन्यास एक वृहत आकार की गद्य रचना है जिसके अन्तर्गत वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों के माध्यम से कथा को प्रस्तुत किया जाता है। वास्तव में उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है। यह जीवन का प्रतिरूप है जो विविधता से पूर्ण होता है। विभिन्न घटनाओं, पात्रों एवं संवादों के मेल से जो कथा बनती है वह समय तथा युग की विशेष देन होती है। कथा के विकास के स्थान तथा समय के अनुरूप ही उसकी पृष्ठभूमि का अंकन करना उपन्यासकार का कर्तव्य होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उपन्यास केवल काल्पनिक नहीं बल्कि जीवन के सत्यों को प्रस्तुत करने वाली विद्या है जिसका हिन्दी साहित्य जगत में एक महत्वपूर्ण स्थान है।

उपन्यास के तत्वों एवं इस विद्या के विकास को जानने के बाद अब हम आपके पाठयक्रम में निर्धारित उपन्यास 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' का विस्तृत विवेचनात्मक अध्ययन करेंगे।

उषा प्रियम्वदा

उषा प्रियम्वदा हिन्दी की विशिष्ट एवं प्रसिद्ध कथाकार है। इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य रचना में अपना विशेष योगदान दिया है। आप हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं की दक्ष एवं सुयोग्य ज्ञाता रही हैं। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में पीएच.डी. और अमेरिका से पोस्ट—डॉक्टरल की उपाधि प्राप्त की। इनके पांच उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं — पचपन खम्भे लाल दीवारें (1962) रूकोगी नहीं राधिका

(1966) शेष यात्रा (1984) अन्तर–वंशी (2000) और भया कबीरउदास (2007)। आपके चार प्रसिद्ध कहानी संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं – फिर बसंत आया (1961) जिन्दगी और गुलाब के फूल (1961) एक कोई दूसरा (1966) और कितना बड़ा झूठ (1997) इनकी विभिन्न कहानियों के विभिन्न संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं जैसे – मेरी प्रिय कहानियां, शून्य तथा अन्य रचनाएं, सम्पूर्ण कहानियां आदि। भारतीय साहित्य, लोक कथाओं एवं मध्यकालीन भक्ति काल पर इनके लेख अंग्रेजी में प्रकाशित होते रहे हैं। इन्होंने मीराबाई तथा सूरदास की रचनाओं का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया जिसे साहित्य अकादमी, दिल्ली द्वारा पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया है। इसी तरह इन्होंने आधुनिक हिन्दी कहानियो ंके अनुवाद भी किए। इंडियन स्टडीज़ विभाग में इन्हें 'फुल प्रोफैसर आफ इंडियन लिटरेचर' का पद मिला। आपके जीवन का अधिकांश समय साहित्य लेखन, अध्ययन तथा बागवानी में व्यतीत होता है।

उषा प्रियम्वदा की गणना हिन्दी के उन कहानीकारों में होती है जिन्होंने आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। इन्होंने आज के मनुष्य के जीवन की ऊब, छटपटाहट, संत्रास तथा अजनबीपन की त्रासद स्थिति को अनुभूति के स्तर पर पहचाना और उसे अपने शब्दों में अभिव्यक्त किया। प्रत्येक स्थिति को अनुभूति के स्तर पर महसूस करना और उसे बड़े सरलता एवं स्वाभाविकता से पाठकों तक पहुंचाना उषा प्रियम्वदा की विशिष्टता है। इनकी रचनाओं में व्यक्त अनुभूतियां इतनी सहजता से स्पष्ट होती हैं कि हर वर्ग और हर युग के पाठक का प्रभावित हो जाना स्वाभाविक है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारे' उनका पहला उपन्यास है जो सन् 1962 में प्रकाशित हुआ। इसमें एक शिक्षित तथा कामकाजी भारतीय नारी की सामाजिक तथा आर्थिक विवशताओं तथा उससे उत्पन्न मानसिक यंत्रणा का जो मार्मिक चित्रण मिलता है, वह आज की नारी के जीवन से पूरी तरह साम्य रखता है। आज की शिक्षित तथा कामकाजी स्त्री की नियति यही है कि आर्थिक दृष्टि से सुरक्षित होने पर भी अपने व्यक्तिगत जीवन में अनेकों समस्याओं से जूझने पर विवश हैं। वह अपने जीवन की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं से मुक्त नहीं हो पाती। वह अपनी इच्छा के अनुसार जी नहीं सकती और ऊब तथा घुटन में जीती है। एक स्त्री होने के नाते उन्होंने स्त्री के मन को बड़ी नजदीकी से समझा और उसे अपनी कलम के माध्यम से अभिव्यक्त किया। उषा प्रियम्वदा की रचना को सामाजिक रचना कहा जा सकता है। इसका सम्बन्ध मध्यवर्गीय जन जीवन की प्रमुख समस्या है और वह समस्या है स्त्री का सामाजिक स्तर। भारतीय समाज में विवाह विशेष महत्व रखता। यह जीवन को मर्यादा एवं प्रसन्नता से जोड़ता है। ठीक आयु में लड़की का विवाह होना आवश्यक होता है। किसी भी कारण से ऐसा न होने पर स्त्री पर विभिन्न प्रकार के बुरे प्रभाव पड़ते हैं। वह मानसिक ग्रंथियों का शिकार हो जाती है, समाज में चर्चा का विषय बन जाती है। हमारा समाज ऐसी

स्त्री को बुरी दृष्टि से देखता है। पारिवारिक समस्याओं के कारण उपजी ऐसी स्थिति की मजबूरी को न समझते हुए स्त्री को कई प्रकार के लांछन भी झेलने पड़ सकते हैं। यह उपन्यास भी ऐसी ही स्त्री की कहानी कहता है जो पारिवारिक समस्याओं के कारण विवाह नहीं कर सकती। उसकी आयसे उसके माता–पिता की गृहस्थी, भाई बहनों की पढ़ाई और घर का खर्च चलता है। इसे पूरा करने के लिए वह अपने प्रेम को ठुकरा कर अविवाहित रहने का निर्णय लेती है। वह जानती है कि उसके इस त्याग में उसका जीवन बर्बाद हो जाएगा पर वह मजबूर है। एक शिक्षित, आत्मनिर्भर एवं शिष्ट स्त्री होने के बाद भी वह अपनी किसी इच्छा को पूरा नहीं कर पाती। लेखिका ने इस स्त्री की विवशता को बड़ा नजदीकी से परखा है और उसके प्रति अपनी सहानुभूति भी प्रकट की है। शिक्षित महिलाएं जो कामकाजी भी हैं, उनके जीवन में यह एक आम एवं जटिल समस्या है। लेखिका ने ऐसी स्त्री के जीवन के प्रत्येक पक्ष का विशद व मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसकी मुख्य पात्र जीवन भर संघर्ष करती है अपने भविष्य को दांव पर लगा कर परिवार के लिए त्याग करती है। यह जानते हुए भी कि इस त्याग का कोई पुरस्कार उसे मिलने वाला नहीं, वह सब कुछ सहन कर लेती है। वह एक कालेज मे शिक्षिका है जिसकी लाल दीवारें और पचपन खम्भे ही उसके जीवन साथी हैं। उसके जीवन का उद्देश्य केवल पिता की गृहस्थी का खर्च उठाना है। ऐसे नीरस और रसहीन जीवन में वह स्वयं को अकेला पाती है।

एक स्त्री होने के नाते लेखिका ने नारी मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। किसी पुरूष द्वारा प्रेम पाकर नारी का ह्रदय खिल उठता है। वह उसे पूरी तन्मयता से पाना चाहती है। कई प्रकार की पारिवारिक, सामाजिक तथा आर्थिक मजबूरियों के कारण वह उसे स्वीकार नहीं कर पाती, इससे बडी वेदना और क्या हो सकती है? अपने परिवार की सुख–सुविधाओ के लिए निजी सुखमय जीवन को बलिदान करना सुषमा की ऐसी उपलब्धि है जो उसे बुरी तरह से तोड़ देती है। लेखिका ने सुषमा के माध्यम से एक आदर्श भारतीय नारी का चि़त्र प्रस्तुत किया है। वह अभिशापित जीवन जीने पर मजबूर हैं।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' – कथावस्तु

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' हिन्दी की सुप्रसिद्ध कथाकार उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित एक सुन्दर उपन्यास है। इसमें एक शिक्षित एवं कामकाजी स्त्री की सामाजिक एवं आर्थिक विवशताओं से उपजी मानसिक यंत्रणा का मार्मिक वर्णन है। लेखिका ने उपन्यास की कथा को इक्कीस खंडों में रखा है। प्रथम खंड में उपन्यास की कथा के अन्त का संकेत है जहां कथा नायिका सुषमा अपने बीते हुए जीवन की स्मृति में भटकती हुई एक विशेष मानसिक व्यथा से गुजर रही है। पाठक को इसी अंक में इस बात का पता लगता है कि सुषमा के जीवन में नील नामक व्यक्ति का ऐसा अस्तित्व था जो उसकी अनुपस्थिति में सुषमा को पूरी तरह झकझोर देता है। दूसरे खंड से उपन्यास की कथा का आरंभ होता है। सुषमा एक कालेज में शिक्षिका है और साथ ही कालेज के छात्रावास की वार्डन भी है। उसका जीवन कालेज के परिवेश में बीत रहा है और वह रंग–बिरंगे कपड़े–दुप्पटे पहनी लड़कियों से घिरी रहती है। अपनी छात्राओं के स्वप्निल चेहरे और युवा–हास्य स्वर उसके एक आकर्षक संसार में प्रसन्नता देते हैं। अपने पद की गरिमा से अभिभूत सुषमा अपनी दुनिया में खुश है।

कालेज में लड़कियों को पढ़ाना, सह–अध्यापिकाओं के साथ बैठना, उत्तर–पुस्तिकाएं जांचना और होस्टल के काम करना सुषमा की दिनचर्या है। लेखिका ने विभिन्न प्रकार के स्वभाव वाली अध्यापिकाओं के संवादों का वर्णन किया है। इनमें से कुछ पढ़ाने में अरूचि रखती हैं और कुछ दूसरों की छान–बीन में लगी रहती हैं। सुषमा के वार्डन बनने पर उसकी सहकर्मी अध्यापिकाएं उसे बिना मांगे ही तरह–तरह के सुझाव देती रहती हैं। कालेज में छात्राओं का घूमना, फिरना, काफी हाउस में बैठकर चाय काफी पीने आदि का बड़ा सजीव चित्रण प्रस्तुत करते हुए लेखिका ने सुषमा के स्वाभाविक गुणों को उजागर करने का प्रयास किया है। सुषमा अपनी एक मौसी को याद कर रही है जिसे उसने अपने लिए साड़ियां बनवाने को कहा था। साथ ही उसे याद आता है कि उसकी मौसी ने उसकी मां से सुषमा की शादी करवाने की बात कही थी। उसे मां के कहे शब्द याद आते हैं – 'सुषमा की शादी तो अब हमारे बस की बात नहीं रही। इतना पढ़ लिख गई, अच्छी नौकरी है और अब तो, क्या कहते हैं, होस्टल में वार्डन भी बनने वाली है। बंगला और चपरासी अलग से मिलेगा, बताओ, इसके जोड़ का लड़का मिलना तो मुश्किल ही है।' सुषमा की पढ़ाई और पदवी उसके लिए अभिशाप बन रहा है। सुषमा को मौसी की हमदर्दी अच्छी लगती है जो कहती हैं – लड़कियां सभी की होती हैं, शादियां भी सभी करते हैं। तुम्हारी तरह हाथ–पर–हाथ रखकर बैठने वाला कोई नहीं देखा।' सुषमा याद कर रही है। उसने मौसी से कहा था – 'आप भी मौसी, किस पचड़े को ले बैठीं। जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण काम हैं, सिर्फ विवाह ही तो नहीं। और देशों में देखिए, बिना शादी किए ही औरतें कैसे मजे से रह रहीं हैं।' मौसी ने उसे

समझाया 'जैसे रहती हैं, मुझे पता है, तुम एक पुरूष मित्र बनाकर तो देखो, तुम्हारी अम्मा सबसे पहले तुम्हारी खबर लेगी। हमारा समाज किसी को जीने नहीं देता।'

उपन्यास के आरंभ में ही पाठक को इस बात का आभास हो जाता है कि सुषमा का विवाह केवल इसलिए नहीं हो रहा कि उसकी आय से घर का खर्च चलता है। वह स्वयं कहती है – 'पिताजी को पेंशन मिलती ही कितनी है? उसमें तो दो वक्त की दाल रोटी भी न चले। मैं भी अगर न करूं तो किसके आगे हाथ फैलाएंगे? .... मैं जो करती हूं, कर्तव्य समझकर नहीं मौसी, उनके प्यार में करती हूं।' सुषमा की मां को उसकी आमदनी की आवश्यकता थी, उस की मदद से वह अपना घर चलाती थी। पिता पक्षापात से पीड़ित थे। सुषमा चाहती थी कि उसके माता–पिता उसके विषय में सोचें पर घरेलू मजबूरियों के कारण वह चुप रहती थी। उसका जीवन कालेज के कामों, होस्टल के पचड़ों और अन्य कामों में उलझा रहता है। अपनी सहेली मीनाक्षी द्वारा दिए सुझावों पर उसका मन उदास हो जाता है – 'सुषमा तुम्हें शादी कर लेनी चाहिए। तुम ऐसी जिन्दगी के लिए नहीं बनी हो, वह अपने स्वप्नों को टूटता देख झुंझला उठती पर माता–पिता की मजबूरियों को देख कर चुप रहती।

उपन्यास के तीसरे अंक में लेखिका ने नील कश्यप नामक एक नवयुवक का परिचय दिया है जो सुषमा को मौसी की भेजी हुई साड़ियां देने आया है। वह फिलिप्स कम्पनी में कार्य करता है। पहले दिन की औपचारिक भेंट में सुषमा सुन्दर व्यक्तित्व वाले नील से अत्यन्त प्रभावित हुई। अगले दिन नील अपनी बुआ कौशल्या के साथ फिर सुषमा से मिलने आता है। वह सुषमा के घर के साज–सजावट और उसका रहन–सहन देखकर उसकी प्रशंसा करता है। दोनों में बड़ी सहज मित्रता हो जाती है। नील की बुआ के यह कहने पर कि उसने अपने भाई बहनों के लिए स्वयं को कुर्बान कर दिया है, सुषमा असहज हो उठती है। चौथे खंड में सुषमा की मुलाकात नील से बाजार में होती है। दोनों एक रेस्तरां में चाय पीते हैं और कुछ समय साथ रहकर सुषमा नील के प्रति आकर्षित होती है। उसकी बातें उसे बहुत अच्छी लगती हैं पर वह अपनी सामाजिक मर्यादाओं एवं बन्धनों के कारण मुखर नहीं हो पाती। वह भी एक घर, जीवन साथी और बच्चे चाहती है। इसके अभाव में वह माता–पिता को दोषी मानती है पर कुछ कह नहीं सकती। पांचवें खंड में सुषमा की सहेली मीनाक्षी सज–धज कर अपने किसी परिचित के लड़के के साथ डिनर पर जाती है। उसके चेहरे की खुशी देखकर सुषमा को अपने जीवन की कमियों का अहसास होता है। लेखिका ने उसकी इस मनःस्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है–'उस खाली क्षण में उसके आगे मीनाक्षी का उत्फुल्ल मुख तैर गया और जैसे उसके सुख की दीवार में एक दरार–सी पड़ गई। वह न जाने क्या–क्या सोच उठी। ऐसे अवसरों पर वह सदा खिन्न हो उठती और उसे अपने माता–पिता दोषी प्रतीत होते। यदि कुछ परिस्थितियोंवश सुषमा का विवाह न टल गया होता तो आज उसके भी सबकुछ होता – एकान्त शामों का साथी, घर–मोटर, बच्चे।' सुषमा बहुत

आकर्षक एवं सुन्दर है। वह नील को पाकर प्रसन्न है परन्तु बंधनों में जकड़े उसके पांव उसे कहीं जाने नहीं देते। वह एक सीमित दायरे में बंद है। नील उसे पसन्द करता है, यह जान कर वह अत्यन्त संतुष्ट एवं प्रसन्न होती है परन्तु सुषमा मजबूरी की चारदीवारी में कैद है, पद की गरिमा और दायित्व उसके लिए एक बोझ है। वह मानसिक रूप से स्वयं को कुंठित पाती हैं। उसे नील की बांहों का सहारा चाहिए किन्तु वह उस सहारे को मांगने का साहस नहीं जुटा सकती।

उपन्यास के छठे भाग में लेखिका ने सुषमा के कालेज की एक अन्य अध्यापिका स्वाति का वर्णन किया है। स्वाति के किसी पुरूष से सम्बन्ध थे जिसके परिणाम स्वरूप वह गर्भवती हो जाती है। सामाजिक मर्यादा के भय से वह जहर खा लेती है और उसे अस्पताल भेजा जाता है। कालेज की अन्य अध्यापिकाएं इस विषय में भद्दी चर्चाएं करती हैं – 'सामाजिक मापदंडों का जो उल्लंघन करता है उसे दंडित होना ही पड़ता है'। अध्यापिकाओं द्वारा लड़कियों में फैले अनाचार पर कई प्रकार की बातें सुनकर सुषमा का मन खिन्न हो उठता है। वह चाहती है कि उन सब को मिल कर –स्वाति की मदद करनी चाहिए न कि उसकी इस दशा पर हंसना चाहिए। सुषमा द्वारा स्वाति के प्रति सहानुभूति जताने पर उसकी सहेली उससे नील के बारे में पूछती है जो प्रायः उसके पास आता–जाता है। वह उसे जान–पहचान वाला बताती है परन्तु भीतर से संकोच से भर जाती है। सातवें खंड में कालेज की छुट्टियों का वर्णन है। दशहरे की छुट्टियों में हास्टल भी खाली हो जाता है। नील उसे मिलने आता है और दोनों एकान्त में बैठते हैं। दोनों में निकटता बढ़ती है। नील के शरीर का स्पर्श पाकर वह एक विचित्र लोक में खो जाती है। नील द्वारा यह पूछने पर कि वह क्या सोच रही है वह कहती है कि वह केवल खम्भे गिन रही है जो उसे पचपन की गिनती तक दिखाई दे रहे हैं। नील उसे कहता है कि वह उसे बहुत अच्छी लगती है। वह उसके बारे में कुछ जानना चाहता है। वह भी नील के प्रति आकर्षित है, उसे पसन्द करती है परन्तु उसकी मजबूरियां उसे बुरी तरह से आहत करती हैं। लेखिका के शब्दों में – 'अपने को पीड़ा देने की किसी अनजान भावना से प्रेरित हो, अपने स्वप्नों को रौंदेते हुए सुषमा ने कहा, उम्र तैंतीस बरस, घर की गरीब, हिन्दी की टीचर .... कुछ और जानना चाहते हैं?' यह कहते हुए वह रो उठती है और नील से दूर हट जाती है। वह चाह कर भी नील को नहीं अपना सकती।

उपन्यास के आठवें खंड में सुषमा अपने घर गई है। माता–पिता और भाई–बहनों के लिए लाए उपहार दिखाती है पिता के दुख दर्द सुनती है। उनके स्वार्थ को महसूस करके उसका मन कड़वाहट से भर जाता है। पड़ोस में रहने वाले एक वकील के बेटे नारायण से सुषमा के विवाह की बात को माता–पिता इसलिए पूरा नहीं कर पाए थे कि उन्हें सुषमा की

आय चाहिए थी। नारायण का विवाह हो चुका है औरउसके बेटे के नामकरण पर सुषमा अपनी मां के साथ जाती है। सुषमा को वे दिन याद आते हैं जब वह उन्नीस बरस की थी और उसने नारायाण से विवाह का सुखद सपना संजोया था। नारायण की सुखी गृहस्थी देखकर सुषमा उदास हो जाती है। मां सुषमा की मनः स्थिति को समझती है। ''बड़ा जबरदस्त भाग्य लेकर आई है नारायण की बहू। देखा तो, सभी कुछ था, अब लड़का भी हो गया।'' सुषमा को लगता है कि उसकी मां अपनी असमर्थता को बड़ी सफाई के साथ भाग्य पर डाल रही है जब वह कहती है, 'जिसका जहां, जिससे संजोग जुड़ा होता है, वही होता है। हमारे करने—न—करने से क्या होता है।' नवें खंड में सुषमा को अपनी सहेली मीनाक्षी का पत्र प्राप्त होता है जिसकी शादी कलकत्ता के एक बिजनैसमैन से तय हो जाती है। वह ऐश्वर्य से पूर्ण एक नयी अदभुत दुनिया में प्रवेश करने वाली हैं जहां काकटेल पार्टी, डिनर एंड डांस, ब्रिज, नए माडल की गाड़ियां और सभी सुख होंगे। वह कालेज की बंधी—बंधायी जिन्दगी से दूर हो जाएगी जिसमें लेक्चर्स, टयूटोरियल, छोटे—छोटे झगड़े और परनिन्दा के सिवाय कोई मनोरंजन नहीं। उसका पत्र पढ़ कर सुषमा सोचती है — 'जिसके चारों ओर द्वार बन्द हों वह क्या करे? उसी कारागार में रहता रहे, सींखचों से आती धूप और मद्धिम प्रकाश के बल पर सांसें लेता रहे?' छुट्टियां पूरी होते ही सुषमा दिल्ली लौट आती है। स्टेशन पर नील उसे लेने आता है और टैक्सी में उसे कालेज तक छोड़ने जाता है। दोनों लम्बे समय तक एक साथ बैठते हैं। नील की भावनाओं को समझते हुए भी सुषमा अनजान बननेका प्रयास करती है। उसे नील का साथ बहुत अच्छा लगता है। यह जीवन का वह स्पन्दित क्षण था जिसमें उसे सुख का मीठा अनुभव हुआ। उसका ह्रदय मधुरता से पूर्ण हो उठा पर साथ ही एक भय मिश्रित उत्कंठा से वह विचलित हो उठी।

उपन्यास के दसवें खंड की कथा तक आते—आते नील और सुषमा की निकटता बढ़ने लगी। नील के आलिंगन में सुषमा को अपार सुख की अनुभूति होती है। लेखिका ने उसकी इस अनुभूति का चित्रण करते हुए लिखा है —'उसे लगा कि अभी नील से उसका परिचय बिल्कुल नया है और अनजाने, अनचीन्हीं भावनाएं, अनजान स्पर्श, दहलीज के उस पास उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसका शरीर जैसे कसे हुए तारों की वाद्य की तरह था, उंगलियों की हल्की टकोर के लिए आकुल, अधीर।' वह नील के साथ बाहर घूमने जाती है और उसके साथ समय व्यतीत करना उसे अच्छा लगता है। वह लम्बे समय तक चुप चाप नील के साथ बैठना चाहती है। नील उसे पूरी तरह से पाना चाहता है उसे अपनी जीवन संगिनी बनाने को आतुर है पर सुषमा इसके प्रति उदासीन रहती है। नील से समझाताहै — 'मुझे लगता है सुषमा कि तुम्हारा परिवार तुम्हारा अनडयू एडवांटेज लेता है। तुम्हारे भाई—बहन, तुम्हारे माता—पिता की जिम्मेदारी हैं, तुम्हारी नहीं।' यह सुनकर सुषमा रो उठती है पर कुछ कह नहीं पाती। ग्यारहवें खंड में कालेज का वर्णन है जहां सुषमा अपनी सहेली मीनाक्षी से बातें करती हैं जिसमें मीनाक्षी सुषमा से नील के विषय में पूछती है। सुषमा को पता चलता है कि

कालेज तथा होस्टल में उसके विषय में चर्चाएं हो रही हैं। मीनाक्षी उसे समझाती है – 'तुम अपना उत्तरदायित्व समझने की चेष्टा करो। तुम एक जिम्मेदारी के पद पर हो। तुम्हें अपनी छात्राओं के सम्मुख एक उदाहरण प्रस्तुत करना है।' सुषमा ने अपने जीवन में पहली बार सुख का अनुभव किया था। वह नील के प्रेम में आत्मविभोर हुई रहती थी। उसके मन में खुशी का एक विचित्र अहसास था जिसे वह खोना नहीं चाहती थी। वह कुछ सुनना ही नहीं चाहती। वह मीनाक्षी से कहती है – 'तुमने ठीक ही किया मीनाक्षी! अपने प्रियजन जितने निर्दय हो सकते हैं उतने दूसरे नहीं। पर तुमसे एक प्रार्थना है कि अब मुझसे कभी न कहना कि लोग मेरे लिए क्या कह रहे हैं।' सुषमा को नील बहुत प्रिय था। वह स्वयं को कहानी किस्सों की उस राजकुमारी रूपी नील को पाकर खिल उठी थी। वह अपने ही संसार में खोई रहती और उसका चेहरा एक अदभुत चमक से भर गया था। एक दिन सुषमा की भेंट फिर नील से होती है। वह उसे एक एकान्त स्थान पर ले जाता है। सुषमा अपने मन की उथल–पुथल में घिरी उससे कहती है – 'तुमने कभी यह भी सोचा नील कि मैं तैंतीस साल के बाद भी अछूती और बेदाग तुम्हारी बांहों में कैसे आयी? .... मेरे जीवन के कई ऐसे पहलू है जिनके बारे में मैंने तुम्हें कभी नहीं बताया, बताना नहीं चाहा, क्योंकि मैं नहीं चाहती थी वह काली छाया तुम्हें ढंक ले। पर नील, पिछले ग्यारह सालों से मैं जिन्दगी से निरन्तर लड़ रही हूं।' वह नील को अपनी मजबूरियां बताती है कि वह चाह कर भी नील से विवाह नहीं कर सकती।

उपन्यास के बारहवें अंक में लेखिका ने सुषमा की कालेज तथ हॉस्टल के प्रति बढ़ रही उदासीनता का वर्णन किया है। लड़कियों की उदंडता निरन्तर बढ़ रही है। अन्य अध्यापिकाएं सुषमा के व्यवहार पर व्यंग्य करती हैं पर एक सखी मीराधर उसे विवाह कर लेने का परामर्श देती है। तेरहवें खंड में कालेज की छात्राओं के छोटे–छोटे झगड़ों का वर्णन है। नील शहर से बाहर गया था वह कई दिनों के बाद लौटता है। सुषमा उसके लिए खाना तैयार करती है और बड़े चाव से सज–धज कर उसका इंतजार करती हैं। दोनों एक साथसमय व्यतीत करते हैं। सुषमा एक सुखद अहसास से विभोर हो उठती है। अगले अंक में सुषमा की मां, बहन और भाई उसके पास आते हैं। अचानक एक दिन नील के आने पर सुषमा बहुत बेचैन होती है। मां नील से बहुत सी बातें करके यह जानना चाहती है कि उसका सुषमा के पास आने का कारण क्या है। मां सुषमा की बहन नीरू के लिए लड़का देखने के लिए आई हैं। जब उसे लड़के वाले देखने आते हैं तो मां उसे नील द्वारा लाई सुषमा की साड़ी पहना देती है। सुषमा बुरी तरह से आहत हो जाती है पर चुप रहती है। लड़के वालों द्वारा हां न करने से मां अपना क्रोध सुषमा पर उतारती है और दोनों में कहा सुनी हो जाती है। मां नील की मौसी कृष्णा को चिट्ठी लिखती है कि वह नीरू का विवाह नील से करवा दे। सुषमा वह चिट्ठी डाक में डालने के लिए जाती है पर आफिस जाकर उसके टुकड़े–टुकड़े

करके फेंक देती है। लेखिका ने सुषमा की मनः स्थिति का वर्णन बड़ी संजीवता से किया है। सुषमा नील से प्रेम करती है। यह जानते हुए भी कि उसकी मजबूरियां उसे नील से मिलने नहीं देंगी, उसे छोड़ देने का विचार उसे विचलित कर देता है। वह नहीं चाहती है कि उसके सिवाय किसी और का नाम नील से जुड़े।

कथानक के अगले भाग में कालेज की एक अध्यापिका मिस शास्त्री सुषमा को बदनाम करके उसे हास्टल वार्डन के पद से उतरवाना चाहती है। मां के वापिस जाने के बाद नील सुषमा से मिलने आता है। नील उसके जीने का आधार बन गया था। उसकी बांहों में सिमटकर वह अपनी परिस्थितियों को भूल जाती थी। नील एक कवच था जो उसे सभी समस्याओं से बचाए रखता था। अपने घुटन भरे जीवन में उसे नील का सहारा भला लगता था। वह उसके लिए अनमोल था। एक शाम अचानक मिस शास्त्री अन्य अध्यापिकाओं को लेकर सुषमा के घर में घुस आती है। सुषमा और नील को एक साथ बैठे देखकर व्यंग्य करती है जिससे सुषमा बेचैन हो जाती है। सोलहवें अध्याय में सुषमा और नील फिल्म देखने जाते हैं वहां वे इस घटना को याद करते हैं और नील स्वयं को दोषी मानता है। दोनों का मन फिल्म में नहीं लगता और वे बाहर आकर बाजार में घूमते हैं। सत्रहवें खंड में कालेज के परिवेश का चित्रण है।सुषमा लाइब्रेरी में किताबें देख रही होती है जब उसे कुछ लड़कियों की बातें सुनाई देती हैं। वे उसके और नील के सम्बन्णों के बारे भद्दे मजाक कर रही थीं। ये बातें सुनकर वह सन्न रह जाती है। लेखिका के शब्दों में 'जो कुछ उसके लिए अमूल्य और स्वर्गिक था, दुनिया की आंखों में वह कितना सस्ता और उपहासास्पद बन गया था .. .. उसे लगाउसकी शक्ति निचुड़ गई है।' वह घबरा जाती है औरउसे चक्कर आने लगते हैं। कुछ देर आराम करने के बाद वह नील को बुला लेती है। नील उसे अपनी चाची के घर ले जाता है। वह सुषमा को हौंसला देता है और उसे पाकर प्रसन्नता प्रकट करता है' वह कहता है – 'जब मैं तुम्हें देखता हूं तो मेरे मन में बहुत अभिमान जाग उठता है। मुझे कभी कभी ऐसा लगता है कि मैंने तुम्हें जाना ही नहीं, पाया ही नहीं। अभी तुम्हारा हाथ छुऊंगा तो मेरे मन में फिर अदम्य लालसा जाग उठेगी' सुषमा नील के प्रेम–प्रदर्शन से सरोबार हो उठती है। उसे नील की निकटता बहुत सुख देती है। फिर भी वह स्वयं को नितान्त अकेला महसूस करती है। एक तरफ उसका निजी जीवन, परिवार का मोह था दूसरी तरफ दुख, अपमान और लज्जा का अनुभव। उसे सभी सखी सहेलियां भूलती जा रही हैं। वह अपने मन के दुख को मीनाक्षी से सांझा करती है जो उसे सलाह देती है कि वह अपने जीवन के विषय में सोचे। पिता की गृहस्थी को संभालना उसकी जिम्मेदारी नहीं है। वह कहती हैं – 'तुम पागल हो सुषमा। मुट्ठियां खोल कर अपनी निधि लुटाते मैंने किसी को नहीं देखा। तुम्हें इस आत्मपीड़न से क्या सुख मिलता है। तुम्हें जीवन में जो कुछ मिल रहा है उसे स्वीकार क्यों नहीं कर लेती?' सुषमा कहती है कि उसे स्वीकार करने का साहस उसमें नहीं। आज से बीस

बरस बाद भी वह उसी कॉलेज में होगी, कालेज के पचपन खम्भों की तरह स्थिर, अचल नील ने उसे उसके रूप का बोध करवाया जिससे उसका ह्दय संतोष से परिपूर्ण हो गया था पर वह उसे अपनाने में असमर्थ थी।

कथा के अठारहवें अध्याय में नील सुषमा से जीवन साथी बनाने की इच्छा प्रकट करता है। सुषमा शर्मिंदगी, जलालत और बेसहारा होने की स्थिति से उबर नहीं पाती। प्रिंसीपल ने उसे बुलाकर नौकरी से इस्तीफा देने को कहा। उसके सामने माता—पिता, भाई बहनों की जिम्मेदारियां थीं। वह पागलों की तरह स्वलाप करती है — 'नहीं रोऊंगी। मैं यहां से चली जाऊंगी। कहीं और नौकरी कर लूंगी पर नील को अपने जीवन से दूर कर देना मेरे वश का नहीं।' नील सुषमा को नौकरी छोड़ देने की सलाह देता है। वह उससे विवाह करना चाहता है पर वह मजबूर होकर कहती है — 'आई कांट मैरी यू। तुम जानते हो नील .... मेरी बहुत जिम्मेदारियां हैं। तुमसे तो कुछ भी छिपा नहीं है। पक्षाघात से पीड़ित बाबू, दो बहनें और भाई, सब मुझे ही करना है।' नील उत्तर देता है, 'वे जिम्मेदारियां मेरी भी होंगी। तुम्हारे भाई—बहनों, सबके लिए सब कुछ वैसे ही होगा जैसा होता आया है।' सुषमा यह बोझ नील पर नहीं डालना चाहती। वह नील से छोटी आयु की सुन्दर लड़की से विवाह करने को कहती है क्योंकि 'यह कालेज, ये खम्भे, मेरी डेस्टिनी है, मुझे यहीं छोड़ दो।' बहुत बार कहने पर भी सुषमा नहीं मानती। निराश होकर नील कहता है — 'क्या तुम्हें किसी और की प्रतीक्षा है, कोई ऐसा जो कि तुम्हारी नजरों में तुम्हारा पूरा मोल चुका सके। तुमने अपने ऊपर जो प्राइसचिट चिपका रखी है, उतना सब देने को मेरे पास नहीं है .... तुम यहीं रहो, इन पचपन खम्भों में बंदी होकर। मैं तुम्हारे बहकावे में आ गया था। मैं सोचने लगा था कि तुम्हारे लिए मैं सब कुछ बन गया हूं। अब मैंने जाना कि तुम्हारे पास खूबसूरत चेहरे के अलावा एक बहुत व्यावहारिक बुद्धि और अपना भला समझने वाला दिमाग भी है।'

नील सुषमा के जीवन से चला जाता है और सुक्षमा बुरी तरह से टूट जाती है।

कथा के उन्नीसवें अध्याय में सुषमा की बहन नीरू का विवाह हो जाता है। उसने मां की एक बड़ी जिम्मेदारी पूरी कर दी। कृष्णा मौसी सुषमा के प्रति सहानुभूति प्रकट करती है — 'मैं तो कहूंगी कि एक लड़की का गला काट कर, दूसरी का ब्याह रचाकर बड़ी बीबी ने अच्छा नहीं किया। सुषमा के कंधे पर छह हजार का बोझ डालना कहां का न्याय है।' सुषमा बुरी तरह से टूट जाती है जब उसे पता लगता है कि नील किसी और से विवाह करने पर राजी नहीं हो रहा।

बीसवें अध्याय में सुषमा अपने कालेज में नीरू के विवाह के उपलक्ष्य में एक पार्टी का आयोजन करती है। वहां यह चर्चा होती है कि सुषमा ने नील से सम्बन्ध तोड़ कर समझदारी की हैं क्योंकि — इस आयु में ऐसे बचकानी बातें अच्छी नहीं लगती। सुषमा के लिए नील को भुला पाना मुश्किल है। वह मीनाक्षी से कहती है — 'कोई ऐसी दवा हो जिससे सब कुछ भूल

सकूं, तभी मुझे चैन मिल जाएगा। हर रोज जब मेरे सामने वही चेहरे पड़ते हैं तब मेरा दुख हर रोज नया हो जाता है।' सुषमा रोज कालेज जाकर छात्राओं को पढ़ाती है। ऊपर से प्रसन्न दिखने का प्रयास करती है पर उसकी आंखों में फैली वेदना किसी से छुपी नहीं है। पढ़ाते–पढ़ाते वह विषय भूल जाती है उसका ध्यान उखड़ जाता है। छात्राएं भी महसूस करती हैं कि अब सुषमा के अध्यापन में पहले जैसा रस नहीं है, ध्यान को पकड़–बांधने की शक्ति नहीं रही। सुषमा सोचती है – 'नील के बगैर मैं कुछ भी नहीं हूं, केवल एक छाया, एक खोए हुए स्वर की प्रतिध्वनि, और अब ऐसी ही रहूंगी, मन की वीरांनियों में भटकती हुई।'

उपन्यास के अंतिम अध्याय में सुषमा एक निर्जन उसे टीले पर बने एक मंदिर की याद आती है जहां एक भिखारिन ने उसे सुखी गृहस्थन होने की दुआ दी थी। अचानक नील वहां पहुंचता है जिसे देखकर सुषमा हैरान हो जाती है और उसे आने का कारण पूछती है। नील उसे गांड़ी में बैठाकर दूर ले जाता है जहां वे एकान्त में बैठते हैं। नील एक बार फिर सुषमा को अपनाने की बात करता है पर पूरी तरह से टूट चुकी सुषमा स्वीकार नहीं करती। वह अपने ह्दय की वेदना व्यक्त करते हुए कहती है – 'जब हम फूल की पंखुडियां नोचकर फेंक देते हैं तब फूल को कैसा लगता होगा, मैं अब समझ पाई हूं। उन नुची पंखुडियों के ढेर पर मैं बैठी हुई हूं।' सुषमा नील को जाने को कहती है और उसके जाने के बाद बुरी तरह से टूट जाती है। कालेज के समारोह के लिए वह बाजार में खरीददारी करने जाती है जहां उसे नील की माता, बहन तथा चाची मिलती है। उनसे पता लगता है कि नील हालैंड जा रहा है। वे नहीं जानतीं कि कितने समय बाद लौटेगा। उसे पता लगता है कि अगले दिन रात दस बजे की फ्लाइट से नील जाने वाला है। पूरा दिन वह कालेज के समारोह में व्यस्त रही। जैसे ही घड़ी ने रात के नौ बजाए सुषमा एकदम उठी और उसने एयरपोर्ट जाने के लिए टैक्सी मंगवायी। वह चलने को आतुर हो उठी पर अचानक उसने अपना निर्णय बदल दिया। उसने अपनी सखी से कहा – 'टैक्सी वापिस करदो मीनाक्षी, मैं नहीं जाऊंगी।' उपन्यास की कथा यहीं समाप्त होती है।

यह एक मजबूर स्त्री की दुखद कथा है। सुषमा के कालेज के छात्रावास के पचपन खम्भे और लाल दीवारें उन परिस्थितियों के प्रतीक हैं जिनमें रहकर उसे ऊब तथा घुटन का तीखा अहसास होता है, पर वह उससे मुक्त नहीं हो पाती। इन परिस्थितियों में जीना उसकी नियति बन गयी है। यह स्त्री के जीवन की विडम्बनाहै कि जो वह नहीं चाहती, उसे करने पर विवश है। उषा प्रियम्बदा ने सुषमा की मानसिक उलझन एवं मजबूरी को बड़े कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास नारी की मानसिक व्यथा का सजीव उदाहरण कहा जा सकता है।

बी.ए. भाग—द्वितीय हिन्दी पत्र : हिन्दी साहित्य
सैसेस्टर-IV

पाठ संख्या : 2.2 लेखिका : डा. हरिसिमरन कौर

पात्र तथा चरित्र चित्रण

प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव में कुछ गुण और कुछ दोष पाये जाते हैं जिनके आधार पर उसका चरित्र बनता है। किसी भी रचना में आए पात्रों का एक विशिष्ट रूप होता है जो उन्हें एक दूसरे से भिन्न करता है। लेखक जो कथा कहना चाहता है उसे पात्रों के माध्यम से पाठक के सामने रखता है। जीवन के प्रति उसका जो दृष्टिकोण होता है उसे व्यक्त करने के लिए पात्र मुख्य एवं कुछ गौण होते हैं। उनके आचार—व्यवहार के माध्यम से ही कथा विकसित होती है। इस उपन्यास में पात्रों की संख्या सीमित है। मुख्य पात्र हैं सुषमा तथा नील। अन्य पात्र गौण पात्रों में आते हैं जिनके द्वारा लेखिका ने सुषमा एवं नील की कथा को आगे बढ़ाया है। यहां हम पात्रों का चरित्र—चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

मुख्य पात्र—1 **सुषमाः**— सुषमा उपन्यास की केन्द्रीय पात्र हैं। इसकी कथावस्तु उसी के जीवन पर आधारित है। उपन्यास के प्रथम अंक में वह कथा के अन्त की ओर संकेत करती है जब नील से दूर होकर वह स्वयं को नितान्त अकेला पाती है और उसे अपना जीवन सारहीन प्रतीत होता है। अगले अंकों में वह अपने अतीत को याद करती है। वे दिन जो उसने नील के साथ व्यतीत किए, वही अब उसके जीने का सहारा हैं। कथा के अंतिम भाग के बाद पहले भाग की विषयवस्तु स्पष्ट हो जाती है।

1. आदर्शवादी स्त्रीः— सुषमा का चरित्र एक आदर्श भारतीय स्त्री को प्रस्तुत करता है जो त्याग की मूर्ति कही जा सकती है। वह अपने जीवन को भाई—बहनों तथा माता—पिता के लिए उत्सर्ग कर देती है। पढ़ी लिखी और कमाऊ होने पर भी वह अपने सुखी जीवन के बारे में हीं सोचती। पक्षाघात से पीड़ित अपने पिता के प्रति उसे विशेष सहानुभूति है। वह अपनी आय से घर का खर्च, भाई बहनों की पढ़ाई एवं अन्य जरूरतों को पूरा करती है। इस दृष्टि से वह एक आदर्श पुत्री है।

2. सादा स्वभावः— सुषमा स्वभाव से अत्यन्त शालीन है। वह कालेज में एक सुशील स्त्री के रूप में प्रसिद्ध है जो सुन्दर होते हुए भी बड़ी सादगी से रहती है। उसकी इस शालीनता से प्रभावित होकर प्रिंसीपल उसे कालेज हॉस्टल की वार्डन बना देते हैं। उसका रहन—सहन भी साधारणहै जिससे उसकी छात्राएं उससे प्रभावित होती हैं और उसे सम्मान देती हैं।

3. मेहनती और इमानदारः— सुषमा स्वभाव से मेहनती है। वह पूरी ईमानदारी से अपना कार्य करती है। पूरी रूचि से अध्यापन कार्य करती है। वह वार्डन है परपूरी ईमानदारी से रहती

है। जब उसकी मां उसके पास आती है और उसे वार्डनशिप से फायदे उठाने की बात करती है तो उसे अच्छा नहीं लगता। वह मां से कहती है – 'अब यही तो सिखाओगी अम्मां। बहुत कुछ किया जिन्दगी में, यह बेइमानी नहीं की, लगता है तुम्हारे बाल–बच्चों की खातिर यह भी करना पड़ेगा।' मां के यह कहने पर कि दुनिया फायदे उठाती है तो वह क्यों नहीं उठा सकती। वह भड़क उठती है – 'दुनिया क्या करती है यह मेरे सामने न कहो अम्मां।' सुषमा अपने सम्बन्धों के प्रति भी इमानदार हैं। अपने जीवन को ताक पर रख कर वह अपने प्रत्येक रिश्ते के प्रति इमानदार रही। एक स्त्री का इतना बड़ा त्याग सचमुच सराहनीय कहा जा सकता है।

4. बुद्धिमानः– सुषमा पढ़ी लिखी समझदार स्त्री है। वह अपनी छात्राओं, सहकर्मी अध्यापिकाओं और नौकरों से बड़ी शालीनता से बात करती है। उसके व्यक्तित्व में समझदारी की गरिमा है जो उसे अन्य अध्यापिकाओं से भिन्न करती है। वह स्टाफ रूप में बैठकर दूसरों की निन्दा चुगली नहीं करती। हर समस्या को अपनी बुद्धिमता से सुलझाने का प्रयास करती है। वार्डन के तौरपर काम करते हुए भी वह बड़ी समझदारी से कार्य करती है।

5. सच्ची प्रेमिकाः– एक प्रेमिका के रूप में सुषमा ह्रदय की गहराईयों से नील से प्रेम करती है। उसे किसी बात का लालच नहीं है। नील द्वारा लाए तोहफे स्वीकार करने में उसे संकोच का अनुभव होता है। नील के प्रति अपने प्रेम में वह पूरी तरह से इमानदार है। उसे नील का साथ अच्छा लगता है, वह उसे अपनाना चाहती है। अपनी मजबूरियों को जानते हुए भी वह नील के प्रेम में सरोबार है। नील उसके आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित है। उसकी आंखों की स्वच्छता एवं उसकी हंसी का खुलापन सुषमा को अच्छा लगता है। वह नील की बांहों का सहारा चाहती है। नील के साथ समय बिताना उसे अच्छा लगता है –'वह अपनी पीठ पर नील के दिल की धड़कन महसूस कर रही थी और नील की ऊंगलियां उसकी अनावृत्त बांहों को छू रही थी। वह उसी तरह, बिना हिले बैठी रही और स्थिर पलकों से कालेज की नई बिल्डिंग देखती रही।' उसके दिल में नील के लिए अपार प्रेम है पर उसकी मजबूरियां एक पल भी उसका साथ नहीं छोड़ती। वह अजीब कशमकश में जीती है – 'नील से मुझे क्या .... वह मेरा कौन है? वह नील के प्रत्येक प्रेम–प्रदर्शन को न चाहते हुए भी नकारती रहती है। नील के यह कहने पर कि 'आप क्यों अपने को भुलावे में डालती है? मैं जानता हूं कि आप चाहती हैं। अगर नहीं चाहती तो क्यों मेरी ज्यादतियां बरदाश्त करती जाती हैं? माना कि आप बहुत करूणामयी हैं। मैं तो इतना स्वार्थी हो गया हूं कि प्यार नहीं तो करूणा ही सही, जो भी मिले। बताइए, क्यों दुत्कारती रहती हैं?' सुषमा उत्तर देती है, 'यह सब ठीक नहीं, मेरा मन स्वीकार नहीं करता।' अपने प्रेम में वह किसी सीमा को पार नहीं करना चाहती। वह नील से कहती है – 'तुम पास होते हो तो मुझे मौन भी बहुत अर्थपूर्ण लगने लगता है।'

सुषमा सच्चे अर्थों में नील से प्रेम करती है और उसे लगता है कि वह नील के साथ

जुड़े रिश्ते को तोड़ नहीं पाएगी। लेखिका के अनुसार – नील उसे प्रिय था, उसने यह बात–स्वीकार कर ली थी। वह कहानियां की उन शापग्रस्ता राजकुमारी की भांति थी, जो नील के स्पर्श से जाग उठी थी। कभी कभी नील के मुख पर भावों के उतार–चढ़ाव को देखकर उसे अपने पर आश्चर्य होता। क्या किसी और को इतना सुख देने, किसी के मुख पर इतनी कोमलता लाने की क्षमता उसमें है?'

6. स्पष्टवादिनीः– सुषमा स्वभाव से स्पष्टवादी है। वह नील से कुछ छुपाना नहीं चाहती। उसने अपनी भावनाएं, विचार एवं ह्रदय नील को समर्पित कर दिया पर उससे किसी वस्तु की कामना नहीं की। नील की बांहों में सिमटकर वह अपनी सारी समस्याएं भूल जाती थी। नील एक कवच था जो उसे समस्त समस्याओं से बचाए रखता था। उसके जीवन की सारी अपूर्णता एवं भटकन नील के सामीप्य से दूर ले जाती थी, पर उसकी मजबूरियां उसे नील को अपनाने के लिए आज्ञा नहीं देती। वह नील से स्वष्ट शब्दों में कहती है – 'मेरे जीवन के कई ऐसे पहलू हैं, जिनके बारे में मैंने तुम्हें कुछ नहीं बताया, बताना नहीं चाहा, क्योंकि मैं नहीं चाहती थी कि वह काली छाया तुम्हें भी ढंक ले। पर नील, पिछले ग्यारह सालों से मैं जिन्दगी से निरन्तर लड़ रही हूं।' नील के बार बार कहने पर भी वह उसे अपना नहीं पायी।

7. चरित्रवान स्त्रीः– सुषमा बडे साधारण परिवार की स्त्री है। घर की आर्थिक तंगियों के कारण वह नौकरी करने पर मजबूर है पर इसके लिए वह अपने चरित्र को कलंकित नहीं होने देती। वह नील से कहती है – 'यह नौकरी मेरे लिए बहुत कीमती है। निर्धन मैं भले ही रही होऊं, पर स्वाभिमानी भी बहुत रही। जीवन में कभी कभी ऐसे अवसर भी आए, जबकि मैं अपने शरीर के मोल से धन और आराम पा सकती थी। पर वह मैंने स्वीकार नहीं किया। एम.ए. करने के बाद मैंने एक प्राइवेट कालेज में नौकरी की। वहां के सेक्रेटरी नगर के पुराने रईसों में थे। उन्होंने किस वस्तु का प्रलोभन नहीं दिया मुझे, पर मैंने वह नौकरी छोड़ दी। .... नौ साल से इस कालेज में हूं नील, पर यहां लोग किसी को जीने नहीं देते। इसीलिए मैं तुमसे कह रही थी कि मेरी जिन्दगी खत्म हो चुकी है। मैं केवल साधन हूं। मेरी भावना का कोई स्थान नहीं। विवाह करके परिवार को निराधार छोड़ना मेरे लिए संभव नहीं। मैंने अपने को ऐसी जिन्दगी के लिए ढाल लिया है। तुम चले जाओगे तो मैं फिर अपने को उन्हीं प्राचीरों में बन्दी बना लूंगी।'

8. आत्मविश्वास से पूर्णः– सुषमा के नीरस जीवन में नील का आगमन एक अपूर्व सुख का अहसास था। उसने नील को सच्चे मन से प्यार किया पर अपनी जिम्मेदारियों को निभाते हुए अपना नहीं सकी। उपन्यास की कथा में अत्यन्त दुखी ह्रदय से उसने यह त्याग किया परन्तु अपने आत्मविश्वास के बल पर वह हार कर भी हारी नहीं। अपने कर्त्तव्यों को निभाती

हुई वह जीवन के राह पर निकल पड़ती है। उसमें आए बदलाव को सभी अनुभव करते हैं वह स्वयं को संयत रखती है छात्राओं को लगता है कि सुषमा के होंठ मुस्कराते हैं, आंखें नहीं। अब वह कलास में नोटस लेकर पढ़ाती है और बोलते बोलते अटक जाती है, लड़कियों से पूछती है कि वह क्या कह रही थी। उसके लेक्चर में जान नहीं रही। वह निरन्तर सोचती है — 'नील के बगैर मैं कुछ भी नहीं हूं, केवल एक छाया, एक खोए हुए स्वर की प्रतिध्वनि, और अब ऐसे ही रहूंगी, मन की वीरानगियों में भटकती हुई।'

सुषमा ने नील की यादों के साथ जीने में ही संतोष कर लिया है। लेखिका ने सुषमा के जीवन की इस त्रासद स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है — 'कुछ स्मृतियां, कुछ स्वप्न, कुछ अस्फुट शब्द, श्रमरत छात्र की तरह सुषमा बार बार उन पृष्ठों को उलटकर दोहराती है। उन संवेगों की दहलीज पर खड़ी होकर अतीत में झांकती है, मन की संकुल गलियों में भटका करती है — हर वाक्य, हर मुद्रा और प्रत्येक स्पर्श के अनेकों सन्देशों पर रूकती हुई, ठहरती हुई। और उस समय इस संसार की सीमाएं दूर—दूर हटती जाती हैं और वह अकेली रह जाती है — अपने में सम्पृक्त।'

कुल मिलाकर सुषमा का चरित्र पाठक का ध्यान आकर्षित करने में पूर्ण रूप से सफल है। वह एक आदर्श बेटी और आदर्श प्रेमिका के रूप में प्रशंसनीय है।

2. नीलः— नील इस रचना का दूसरा मुख्य पात्र है। सुषमा के जीवन की कथा नील के साथ सीधा सम्बन्ध रखती है और दोनों का प्रेम—प्रसंग इस कथा का आधार है। लेखिका ने उसे एक आदर्श प्रेमी के रूप में प्रस्तुत किया है जो सुषमा से स्नेह करता है। सुषमा द्वारा विवाह के लिए इंकार करने पर वह निराश हो जाता है। उसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं —

1. सुन्दर व्यक्तित्वः— नील एक सुन्दर नौजवान है। वह अच्छी पढ़ाई करने के बाद दिल्ली में फिलिप्स कम्पनी में काम करता है। उसका व्यक्तित्व आकर्षक है। लेखिका के शब्दों में — 'नील के आचरण का सहज खुलापन मन को कहीं छू गया था। वह जिस प्रकार मौन बैठा चंचल दृष्टि से दीवार पर लगे गुलमुहर के फूलों के चित्र देख रहा था, उससे सुषमा के मन में यह जान पाने की तीव्र जिज्ञासा हुई कि वह क्या सोच रहा है। उसके मुख पर अपने में डूबा—सा जो भाव थ, उससे सुषमा को अकुलाहट हुई।' नील स्वभाव से चंचल है। पहली बार उसे देखकर सुषमा को लगा था कि वह कोई कालेज में पढ़ने वाला किशोर है। वह सुषमा से कहता है कि वार्डन होने के नाते 'पता नहीं आप कैसे अनुशासन रख पाती होंगी। मैं तो आपसे बिल्कुल भी न डरूं।' उसकी बुआ सुषमा से बताती है कि नील अकेला बेटा है। उसके मां—बाप ने उसे सिर पर चढ़ा रखा है और वह हर बात में मनमानी करता है।

2. सच्चा प्रेमीः— नील सुषमा से बहुत प्रेम करता है। वह सुषमा की सुन्दरता एवं शालीनता

पर मुग्ध है और उसके साथ समय बिताना उसे अच्छा लगता है। उसे सुषमा के जीवन की विकट परिस्थितियों के प्रति चिन्ता और सहानुभूति है। वह उसकी जिम्मेदारियां स्वयं उठाने को तैयार है। वह सुषमा के लिए उपहार लाता है। सुषमा के यह कहने पर कि इतना खर्च करने की क्या जरूरत थी, वह कहता है – 'भई मेरे तो सिर्फ एक सुषमा है, वन एंड ओनली, कहीं भी जाऊं, उसके लिए सारा बाजार खरीदने का मन होता है।' वह सुषमा को कहता है – 'जब देखता हूं तभी नई सी लगती हो' उसके आकर्षक व्यक्तित्व और शौर्य से प्रभावित होकर सुषमा उस पर सर्वस्व न्यौछावर कर देती है। वह अक्सर सुषमा के साथ फिल्म देखने या घूमने जाता है। उसे सुषमा की समीपता भली लगती है। सुषमा को नील के साथ देख कर दूसरी अध्यापिकाएं व्यंग्य करती हैं। नील स्वयं को इस स्थिति का दोषी मानता है। उसे सुषमा से विशेष सहानुभूति है। एक बार वह उसे अपनी चाची के घर ले जाता है। सुषमा के यह कहने पर कि चाची का घर बहुत सुन्दर है, वह कहता है – 'पर मुझे तो तुम्हारा कमरा अच्छा लगता है .... मैं जब दिवास्वप्न देखता हूं तो तुम्हारे उस घर का ही चित्रण आता है .... वही घर, जहां जीवन में पहली बार जाना था कि सुख और परिपूर्णता क्या है। कभी–कभी मुझे अपने ऊपर आश्चर्य होता है कि तुम्हारी –सी युवती का प्यार पाने में मैं कैसे सफल हो गया।' वह अपने प्रेम को प्रकट करता हुआ कहता है – 'जब मैं तुम्हें देखता हूं तो मेरे मन में बहुत अभिमान जाग उठता है। मुझे कभी कभी ऐसा लगता है कि मैंने तुम्हें जाना ही नहीं, पाया ही नहीं। अभी तुम्हारा हाथ छुऊंगा तो मेरे मेन में फिर अदम्य लालसा जाग उठेगी।'

नील सुषमा से विवाह करना चाहता है। उसे समझाता है कि सुषमा का परिवार उसका गलत फायदा उठा रहा है। वह सुषमा को उसकी नीरस जिन्दगी से दूर ले जाना चाहता है – 'मेरे साथ चलो .... कहीं दूर, इन सबसे दूर .... मैं तुम्हें घर में बन्दी कर रखूंगा, जिससे किसी की दृष्टि भी न पड़ सके। मुझे डर लगता है कि तुम मुझसे छिन न जाओ।' वह उसे अपने साथ हॉलैंड ले जाना चाहता है। वह बार–बार सुषमा को समझाता है कि वह सब कुछ छोड़कर उसकी जीवन संगिनी बन जाए। सुषमा की मजबूरियां सुन कर वह उसके परिवार की सहायता के लिए भी तैयार हो जाता है। सुषमा के न मानने पर वह बेचैन हो उठता है – 'तो फिर मेरे लिए क्या कहती हो? तुम चाहती हो कि मैं जीवन भर अंधेरे में भटकता हूं? .... सुषमा! यू कांट डू दिस टू मी।' सुषमा उसे अपनी मजबूरियों का वास्ता देती है तो वह भड़क उठता है – 'क्या तुम्हें किसी और की प्रतीक्षा है, कोई ऐसा जो कि तुम्हारी नजरों में तुम्हारा पूरा मोल चुका सके। तुमने अपने ऊपर जो प्राइसचिट चिपका रखी है, उतना सब देने को मेरे पास नहीं है ....।' वह क्रोधित हो उठता है – 'ठीक है, तुम यहीं रहो, इन पचपन खम्भों में बन्दी होकर। मैं तुम्हारे बहकावे

में आ गया था। मैं सोचने लगा था कि तुम्हारे लिए मैं ही सब कुछ बन गया हूं। अब मैंने जाना कि तुम्हारे पास खूबसूरत चेहरे के अलावा एक व्यावहारिक बुद्धि और अपना भला समझने वाला दिमाग भी है।'

वह सुषमा से नाराज होकर हॉलैंड चला जाना चाहता है। जाने से पहले एक बार फिर उससे मिलने आता है। नील धैर्यवान पुरूष है। उसका स्वभाव है कि वह जो चाहता है उसे अवश्य प्राप्त करता है। वह सुषमा से फिर कहता है – 'मुझे इतना क्यों सताती हो, सुषमा? .... मेरी ओर देखो सुषमा। कभी कभी तुम मेरे पास होते हुए भी दूर सी लगने लगती हो। कुछ बोलो, कुछ कहो।' सुषमा से कोई उत्तर न पाकर वह टूट जाता है। प्रेम में असफल नील हॉलैंड जाने को तैयार हो जाता है सुषमा को नील की चाची से पता लगता है कि उसने विवाह से इन्कार कर दिया है और पता नहीं वह कितने वर्षों बाद हॉलैंड से वापिस आएगा।

कुल मिला कर कहा जा सकता है कि नील एक सच्चा प्रेमी है जिसने सुषमा को प्राप्त करने का अथक प्रयास किया। असफल होने पर वह शहर छोड़कर दूर चला गया।

गौण पात्रः– इस उपन्यास में कुछ गौण पात्र भी हैं जिनके माध्यम से कथानक विकसित होता है। इनका परिचय इस प्रकार है –

1. मीनाक्षीः– मीनाक्षी सुषमा के कालेज में अध्यापिका है और सुषमा की सखी है। सुषमा के बहुत निकट है और सुषमा उससे अपने मन की बात करती हैं, वह देखने में सुन्दर और स्वभाव से चंचल है। उपन्यास की कथा से स्पष्ट होता है कि उसका विवाह किसी उद्योगपति से होने वाला है। उसे किताबें पढ़ने का बहुत शौंक है। सहेलियों के बीच बैठकर पढ़ी हुई किताबों के बारे में बताकर उन पर रोब जमाना उसकी आदत है। सांसारिक मामलों में वह पूरी सूझ रखती है। कालेज की एक अध्यापिका स्वाति द्वारा जहर खाकर आत्महत्या का प्रयास करने की घटना पर जब तरह तरह की बातें होती हैं तो वह सुषमा से कहती है – 'दुनिया की यही रीति है सुषमा – दूसरे के फटे में पैर अड़ाना सबको अच्छा लगता है। और हम बहुत प्रबुद्ध, प्रगतिशील महिलाएं बनने का दम भरती हैं।' उसे स्वाति से सहानुभूति है पर उसकी स्थिति का जिम्मेदार भी वह उसी को मानती है।

मीनाक्षी सुषमा और नील के सम्बन्धों के विषय में जानती है। उसे दूसरों की नजर से बच कर चलने का संकेत भी देती है। अपने सहज एवं मधुर स्वभाव के कारण वह सुषमा को बहुत प्रिय थी। वह सुषमा के लिए दूसरों से झगड़ भी लेती थी। वह लोगों द्वारा की जा रही बातों की सूचना सुषमा को देती रहती है। 'सुषमा, तुम बुरा न मानना, मैं बहुत दिनों से तुमसे यही बात करना चाह रही थी। होस्टल की लड़कियों में, स्टाफ–रूम में, नौकरों में, हर जगह आजकल तुम्हारी ही चर्चा है।' सुषमा के यह कहने पर कि उसे किसी की परवाह नहीं

है, वह उसे समझाती है – 'हमारा दायरा ही ऐसा है। कालेज की चारदीवारी के अन्दर जो भी होता है उसमें सभी रूचि लेते हैं। तुम कब आईं, कब गई, इसका लेखा सबके पास होता है।'

मीनाक्षी सुषमा को समझाती है कि वह पिता की गृहस्थी की चिन्ता छोड़कर नील से विवाह कर ले। सुषमा के इन्कार करने पर वह कहती है – 'तुम पागल हो सुषमा। मुट्ठियां खोलकर अपनी निधि लुटाते मैंने किसी को नहीं देखा। तुम्हें इस आत्मपीड़न से क्या सुख मिलता है? तुम्हें जीवन में जो कुछ मिल रहा है उसे सवीकार क्यों नहीं कर लेती?' जब सुषमा नील के साथ विवाह करने पर राजी नहीं होती तो वह उसके दुख को समझती है। वह उसे कुछ दिन छुट्टी लेकर आराम करने की सलाह देती है। वह सुषमा को लेकर बाजार जाती है। वहां उनकी भेंट नील की मां तथा चाची से होती है। उनसे यह जानकर कि नील हॉलैंड जा रहा है, वह सुषमा के प्रति सहानुभूति प्रकट करती है। यह जानकर कि नील अगले ही दिन जा रहा है वह फोन करके फ्लाइट का टाइम पता करती है। वह सुषमा की मनः स्थिति को समझती है और उसे एयरपोर्ट जाने को कहती है। वह टैक्सी के लिए फोन भी करती है परन्तु सुषमा मना कर देती है। एक अच्छी दोस्त की तरह मीनाक्षी ने सुषमा का साथ दिया। इस दृष्टि से मीनाक्षी का चरित्र सराहनीय है।

2. मिस शास्त्रीः– यह कालेज में संस्कृत की अध्यापिका है। इनकी आयु काफी है और अविवाहित हैं। दूसरों के दोष निकालूंगा और निन्दा चुगली करना इनका स्वभाव है। स्वाति सेन के बारे में सुनकर वह अपना शौंक पूरा करने से पीछे नहीं हटती – 'मुझे उसके रंग–ढंग देखकर ही शक होता था पार्ट टाइम बंगला की लेक्चरर, उसमें हर रोज साठ–पैंसठ रूपए की साड़ी पहनना कैसे संभव हो सकता था। .... भई मैं तो कहूंगी सुषमा, तुम न सुनना चाहो तो उठ जाओ। यह अनाचार मुझसे नहीं देखा जाता।' वह हास्टल की लड़कियों से भी नाराज हैं और उन्हें बदतमीज समझती है – 'अब लड़कियों को ही लो, न तमीज़, न कायदा, न शर्म–लिहाज – कल मैं रात को कपड़े बदल रही थी कि अचानक ऊपर नजर गई। देखती क्या हूं कि रोशनदान से दो लड़कियां झांक रही हैं।' मिस शास्त्री सुषमा से भी ईर्ष्या रखती हैं और जहां मौका मिले उसकी निन्दा करती है। वह लड़कियों के बहाने उस पर व्यंग्य कसती हैं। वह कहती है कि कभी वह भी जवान थी पर उसने कोई गलत काम नहीं किया। वास्तव में वह कुंठित व्यक्तित्व वाली है। अपने खालीपन को भरने के लिए उसने एक बिल्ली पाल रखी है जिसे वह 'डियरेस्ट' के नाम से पुकारती है। लेखिका के शब्दों में 'तप्त धरती की तरह मिस शास्त्री, जिनकी निराशाओं ने उनका जीवन के प्रति पूरा दृष्टिकोण विकृत कर दिया। जिस वस्तु के लिए वह तृषित रहीं, शायद उसे हेय तथा निकृष्ट समय उन्होंने इधर से अब मुंह मोड लिया था। वह समस्त संचित स्नेह उन्होंने अपनी बिल्ली

पर उड़ेल दिया था, जिससे यह झलक जाता था कि मिस शास्त्री में भी कुछ संवेदनाएं शेष हैं।'

स्टाफ–रूम में बैठकर मिस शास्त्री बेकार की बातों में लगी रहती है। मिसेज रमा चौधरी की बेटी की शादी हो गयी है और वह अकेली रह गयी। मिस शास्त्री उसे सलाह देती है कि वह भी कालेज के क्वार्टर में आ जाए। यदि कोई मकान खाली नहीं है तो कालेज की वार्डन के बंगले में आ जाए। इसके लिए वह उसे युक्ति बताती है – 'अरे वह तो चुटकियों का काम है। प्रिंसीपल तक रिपोर्ट पहुंच जाए तो बस काम बना समझो। सर्विस का तो कान्ट्रेक्ट होगा, पर वार्डनशिप छोड़ने को तो विवश किया ही जा सकता है।' मिसेज राय चौधरी ऐसा करने को तैयार नहीं होती तो वह समझाती है – 'हमें आपको क्या करना है? दो तीन लड़कियों से प्रिंसीपल को चिट्ठी लिखवाना ही पर्याप्त है कि सुषमा वार्डन पद के लिए उपयुक्त नहीं है। उसका आचरण अनैतिक है। प्रिंसीपल हम लोगों को बुलाकर पूछेगी, क्योंकि हम लोग भी यहीं रहते हैं, तो कह देंगे कि देखा तो हमने भी है।' वह अपनी अन्य सहकर्मी अध्यापिकाओं पर व्यंग्य करने से भी नहीं चूकती। वे उससे पूछती हैं कि उसकी बिल्ली डियरेस्ट कैसी है। वह बताती है कि वह रात भर बाहर घूमती रही जिससे उसे जुकाम हो रहा है। अध्यापिकाएं हंसती हैं कि बिल्ली को भी जुकाम हो सकता है। मीनाक्षी कहती है कि यदि मेंढकी को जुकाम हो सकता है तो बिल्ली को क्यों नहीं? वह सबसे नाराज ही रहती है और हर समय किसी न किसी बात पर बुड़बुड़ करती रहती है। लेखिका ने इस पात्र का बड़ा सहज वर्णन किया । हमारे समाज में ऐसी स्त्रियों की कमी नहीं। ये सब जगह पर पायी जाती हैं। मिस शास्त्री अपनी हरकतों से बाज नहीं आती। एक दिन जब सुषमा नील के पास बैठी होती है तो वह बिना बताए अन्य सहेलियों के साथ उसके घर में घुस आती है। बाद में उसे बदनाम करती है और प्रिंसीपल सुषमा को वार्डनशिप से इस्तीफा देने को कहती है।

इस पात्र के अतिरिक्त सुषमा की मां को भी गौण पात्रों में गिना जा सकता है। सुषमा की मां अपनी परिस्थितियों से मजबूर है। वह सुषमा को नौकरी न छोड़ने पर मजबूर करती है क्योंकि उसकी आमदनी से वह अपनी गृहस्थी चलाती है। सुषमा की भावनाओं के बारे में उसने कभी चिन्ता नहीं की। उसे लगता है कि सुषमा फिजूलखर्ची करती है। सुषमा मां से नाराज रहती है पर पिता की बीमारी से उसे सहानुभूति है। सुषमा नील को बताती है – 'मां ने मुझे सहारा नहीं दिया, ढांढस नहीं बंधाया .... यह कैसी मां है मेरी, पर जिन्दगी ने उन्हें चूस लिया है, निचोड़ लिया है।' वह सुषमा के लिए कुछ नहीं कर पाती। उसके उदास होने पर वह कहती है – 'चुप हो जा बेटा क्या मैं तेरा दुख समझती नहीं? आखिर मां हूं।'

इन पात्रों के अतिरिक्त कुछ और पात्र भी हैं जिनमें मुख्य हैं – मीराधर, सुनन्दा, नीरू, कृष्णा और गौरी सुषमा की नौकरानी है। सुषमा के प्रति स्नेह एवं आदर का भाव रखती है।

जो सुषमा का विरोध करे उसके प्रति क्रोध रखती है। इसी कारण से वह अपने फौजी पति द्वारा बिल्ली को मरवा देती है। सुषमा और नील के सम्बन्धों को वह किसी पर उजागर नहीं करती क्योंकि वह सुषमा से हमदर्दी रखती है।

इस उपन्यास के पात्रों के चरित्र चित्रण के इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि लेखिका ने इन पात्रों के माध्यम से कथा को विकसित किया। सभी पात्र बड़ी सहजता से प्रस्तुत किए गए हैं। किसी भी पात्र का चरित्र विचित्र नहीं लगता। सारे स्त्री पात्र अपने स्वभावगत गुणों से प्रस्तुत हुए हैं। इनके माध्यम से लेखिका ने भारतीय सामाजिक परिवेश को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है।

पाठ संख्या : 2.3 लेखिका : डा. हरिसिमरन कौर

उपन्यास का परिवेश और संवाद

परिवेश शब्द का अर्थ है वातावरण। उपन्यास में जिस वातावरण का चित्रण किया जाता है उससे उस समय विशेष को समाज, रीति–रिवाज़ों, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त होता है। यही कारण है कि उपन्यास को पढ़कर हम यह जान लेते हैं कि इसकी कथावस्तु का सम्बन्ध किस समय के समाज और सभ्यता से है। जब से सृष्टि का निर्माण हुआ है, समय एवं परिस्थिति के अनुसार समाज की परिस्थिति में भी परिवर्तन आते रहते हैं। मनुष्य जिस सामाजिक परिवेश में जन्म लेता है और विकसित होता है, उसका जीवन में विशेष महत्त्व होता है। साहित्यकार जब किसी समाज के जीवन पर आधारित रचना करता है तो उसके सामाजिक परिवेश का सहज चित्रण हो जाता है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास के परिवेश का सम्बन्ध मध्यवर्गीय शिक्षित समाज से है। कथा का केन्द्र एक महिला विद्यालय है। इस रचना में प्रस्तुत परिवेश को निम्नलिखित शीर्षकों में रख कर आंका जा सकता है –

1. सामाजिक परिस्थितियों का चित्रणः– इस रचना की सबसे बड़ी समस्या और विशेषकर परिवार से जुड़ी है। हमारे समाज में बेटी का विवाह एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। आयु बढ़ जाने पर विवाह संभव नहीं होता। विवाह पर किया जाने वाला खर्च भी माता–पिता के लिए एक विकट समस्या बन जाता है। जब लड़की शिक्षित हो जाए तो यह समस्या और भी गंभीर हो जाती है। पढ़ी लिखी लड़की के लिए अच्छा वर खोजना और उसकी अच्छी शादी करना भी जरूरी है। यदि माता–पिता ऐसा कुछ करने पर असफल रहते हैं तो घर के सभी सदस्यों के लिए समस्या खड़ी हो जाती है। उपन्यास को इस समस्या को विभिन्न रूपों में उजागर किया गया है। कथा की मुख्य पात्र सुषमा तैंतीस वर्ष की आयु तक अविवाहित है क्योंकि वह कमाऊं है और उसकी आय से उसके रोगी पिता का घर खर्च चलता है। उसकी छोटी बहन नीरू माता–पिता के लिए समस्या बना हुआ है। मां चाहती है कि सुषमा नौकरी न छोड़े ताकि नीरू के विवाह के लिए रूपए जुटाये जा सकें। वह जब–तब सुषमा से कहती है –'तुम बहुत फिजूलखर्च होती जा रही हो। जरा हाथ दबा कर खर्च किया करो। नीरू की शादी भी तो करनी है।' सुषमा के कहने पर कि शादी तय कर लो वह रूपया दे देगी। मां कहती है – 'एकदम कहां से आ जाएगा। बूंद–बूंद से ही घड़ा भरता है।' यह हमारे समाज की सबसे बड़ी मजबूरी

है। माता–पिता सारी उम्र एक–एक पैसा जोड़ते रहते हैं क्योंकि लड़की उनके लिए ऐसा बोझ है जिसे वे पैसे देकर उतारते हैं।

हमारे समाज में यदि कोई पढ़ी लिखी लड़की विवाह न करके अकेली रहना चाहती है तो भी एक समस्या है। लोग उससे तरह–तरह के प्रश्न पूछते हैं और आमतौर पर उसकी चर्चा होती रहती है। सुषमा भी एक शिक्षित तथा कमाऊ लड़की है। वह कहती है – 'मेरे पास सब कुछ है, आर्थिक रूप से स्वतंत्र हूं, जो चाहूं कर सकने में समर्थ हूं।' वह अपनी सहकर्मिणी मिसेज प्रसाद की बात करती है जो पति को छोड़ चुकी है और स्टाफ–रूम में बैठकर लोगों की निन्दा–चुगली करती है। लेखिका ने विवाह से सम्बन्धित बहुत सी बातों की ओर संकेत किया है। कालेज में पढ़ाने वाली कुछ अध्यापिकाएं अपने शरीर की मांगों पर नियन्त्रण नहीं रख पाती। पुरूषों से गल्त संबंध स्थापित कर लेती हैं। ऐसी स्त्रियां विभिन्न कुंठाओं का शिकार भी हो जाती है। सुषमा के कालेज की एक पार्ट टाइम लेक्चरार भी विवाह न होने के कारण किसी पुरूष के साथ अनैतिक सम्बन्ध स्थापित करके उसके दुष्परिणामों को झेलती है। बुरी तरह से बदनाम हो जाती है और अन्त में उसे विवाह करना ही पड़ता है। वह बड़ी उम्र के व्यक्ति से विवाह करने पर मजबूर हो जाती है क्योंकि हमारा समाज किसी भी स्त्री को विवाह से पहले किसी से प्रेम सम्बन्ध और विशेषतया शारीरिक सम्बन्ध रखने की आज्ञा नहीं देता। स्वाति सेन के विवाह के बारे सुन कर सुषमा सोचती है – 'चन्दन–बिन्दु लगा कर वह वधू बनी होगी। मैं वैसे काफी उदार विचारों की हूं पर सीमा का अतिक्रमण मुझे अच्छा नहीं लगता .... स्वाति ने लाल साड़ी पहन कर अग्नि के सम्मुख शपथ ली होगी। क्या उसे, उस अज्ञात शिशु का एक बार भी ख्याल ना आया होगा? .... जिन्दगी हमें तरह तरह से छलती है।'

नील को चाहते हुए भी सुषमा उससे विवाह नहीं करती क्योंकि उसे माता–पिता की पारिवारिक समस्याएं पूरी करनी हैं। उपन्यास में भारतीय मध्यवर्गीय परिवार की संजीव झांकी प्रस्तुत की गयी है। सुषमा का अपनी छोटी उम्र में पड़ोस के नारायण की तरफ आकर्षित होना, नीरू का बृजमोहन के प्रति आकर्षण, भटनागर की लड़की रेणु का अपने पति के इलावा किसी पुरूष से प्रेम–सम्बन्ध जोड़ना और जगहंसाई से बचने के लिए पिता का चुप रहना आदि ऐसी घटनाएं हैं जिन्हें लेखिका ने बड़े स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया है। मां का सुषमा के पास आना, नील के बारे में गौरी से पूछ ताछ करना और इस बात पर शंकित होना आदि एक मध्यवर्गीय मजबूर मां की विवशता को सामने रखता है। वह सुषमा की मनः स्थिति समझती है, उसे भी खुश देखना चाहती है पर कुछ नहीं कर सकती। लेखिका ने उसके मुंह से कहलवाया भी है – 'चुप हो जा बेटी – क्या मैं तेरा दुख समझती नहीं? आखिर मां हूं।'

2. कालेज के परिवेश का चित्रणः— इस उपन्यास में एक कालेज के वातावरण का चित्रण है। इसकी इमारत लाल रंग की है और इसके बरामदे में पचपन खम्भे हैं। उपन्यास की मुख्य पात्र सुषमा का जीवन इस कालेज की चारदीवारी में कैद है। यह उसके लिए एक बन्दीगृह है और अपनी इच्छाओं तथा भवनाओं को मार कर इसमें कैद रहना उसकी नियति है। उपन्यास के आरंभ में ही पाठक को इस बात का ज्ञान होता है कि यह कथा किसी कालेज से सम्बन्ध रखती है। लेखिका ने बड़े सुन्दर ढंग से उपन्यास का आरंभ किया है — 'एक बहुत मोहक, आकर्षक संसार बिखरा हुआ था— रंगीन दुप्पटों की झलक, अचिन्तित युवा स्वरों का हास्य, और भोले, स्वप्निल चेहरे। .... सुषमा उस संसार की हंसी—खुशी में डूब गई। वह फिर उन्हीं अंजान राहों में भटक गई, जहां का हर मोड़, एक नई आशा लिए होता है। वह भूल गई कि वह कितने मोड़ पार कर चुकी है। अब वह उस स्थान पर आ पहुंची है, जहां पीछे मुड़कर देखने से आशाएं बड़ी खोखली नजर आती हैं और यथार्थ की प्रखरता में कोमल स्वप्न कुम्हला जाते हैं।' कालेज की प्रतिदिन की दिनचर्या का भी सुन्दर वर्णन उपन्यास में हुआ है — 'घंटा टन्न से बजा और उसकी अनुगूंज कालेज के गलियारों और कमरोंमें कांपने लगी। रंगीन ओढ़नियां सिमट आई और उमड़ता हास्य क्लासरूम की गंभीरता में दब गया।'

कालेज में पढ़ाने वाली अध्यापिकाओं का अपने पद की गरिमा पर गर्व करना, एक दूसरे से ईर्ष्या करना और दूसरों के दोष निकालना एक आम बात है। सुषमा कालेज की हास्टल वार्डन बना दी गई है। अपने टेबल पर पीतल की नेमपलेट पर लिखे अपने नाम को देखकर, कमरे के बाहर टंगी अपनी नेमपलेट को देखकर वह फूली नहीं समाती। उसे लगता है वह अब 'कुछ' खास हो गयी है। उसके वार्डन बनने पर उसकी साथिनें उसे अलग अलग सुझाव देती हैं। वह मीनाक्षी से कहती है — 'जब से आई हूं हरेक शुभेच्छु ने मुझे एक लम्बी लिस्ट दी है कि मैं किन बातों पर विशेष ध्यान दूं।' उसके पास एक बंगला है, चपरासी है और एक नौकरानी। उसका रहन—सहन अच्छा है जिससे औरों को ईर्ष्या है।

लेखिका ने अध्यापिकाओं के आपसी झगड़ों का भी स्वाभाविक वर्णन किया है। टाइम टेबल में मिसेज अग्रवाल को लेट पीरीयड नहीं चाहिए क्योंकि उनकी बेबी की आया दोपहर में चली जाती है, बेबी रोती है। इसपर मीनाक्षी कहती है — 'नौकरी है कि घर की खेती ? बेबी का खयाल है तो घर बैठें। .... अरे, बेबी है तो रोए — हमारे बेबी नहीं है तो वक्त—बेवक्त हम ही काम में लगे रहें।' इन अध्यापिकाओं का ध्यान काम में कम और साड़ियों में अधिक रहता है। सुषमा गुड़िया सी सुन्दर है, शालीन है पर अपने काम को ठीक ढंग से चलाने के लिए लड़कियों पर पूरा रोब रखती है। नील भी कहता है — 'आप लोगों में — मेरा मतलब टीचर्स में — बस यही तो खराबी होती है — हर जगह आर्डर देने लगती हैं। अब आप ही हैं, नन्हीं गुड़िया सी लगती हैं, पर रोब इतना कि डर लगे। न जाने क्या—क्या

जिम्मेदारियां ले रखीं हैं। वार्डन, लेक्चरर ....। लेखिका ने सुषमा को एक योग्य अध्यापिका के रूप में प्रस्तुत किया है, एक आकर्षक युवती, खुलकर बोलनी वाली और बुद्धिमती। वह बड़े आकर्षक ढंग से लेक्चरर है और अपने विषय में पूरा ज्ञान रखती है।

इस उपन्यास में लेखिका ने कालेज के वातावरण का सजीव वर्णन किया है। लड़कियों का बरामदों, दलानों में खिलखिलाकर हंसना, कन्टीन में हल्ला–गुल्ला करना और हास्टल में शरारतें करना आम बात होती है। अपनी सबसे चिड़चिड़ी अध्यापिका मिस शास्त्री को जन्मदिन पर एक बिल्ली भेंट देना, उसका नाम 'डियरेस्ट' बुलाना, मिस शास्त्री के टिफिन बाक्स में मेढ़क बन्द कर देना, मिस शास्त्री द्वारा लड़कियों के घर से आए पत्र खोल कर पढ़ना, आदि बड़े स्वाभाविक ढंग से चित्रित हुआ है। प्रायः विधार्थी अपने शिक्षकों का उपहास करते हैं। उनके सामने वे शिष्ट बने रहते हैं। यह एक बुराई तो है पर साथ ही इस बात को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। उनकी आयु ही ऐसी होती है कि वे शरारत से बाज नहीं आ सकते। सुषमा अपनी छात्राओं के प्रति बड़ी ईमानदार है और उनसे पूरी सहानुभूति रखती है। छोटी–छोटी बातों में डांटती भी नहीं है। एक दिन वह लाइब्रेरी में कुछ किताबें देख रही होती है तो उसे कुछ छात्राओं की बातें सुनाई देती हैं, जिन्हें सुनकर वह चकित रह जाती है। लड़कियां सुषमा के बारे में कह रही थी – 'हम लोगों पर अनुशासन रखती हैं। उस दिन रूनू और निकी के साथ सिनेमा चले गए तो फाइन कर दिया और अपने लिए कुछ नहीं .... हमें सब मालूम है। आधी रात को वापस लौटती है, खूब मजे करती हैं। .... एक दिन उनके कमरे की खिड़कियां खुली थी। बस, मोहिन्दर ने झांक कर देख लिया। माली की चारपाई घसीटकर ले आए और उसी पर चढ़ गए .... अनके फ्रेंड तो बैठे थे ऊपर सोफे पर और मिस शर्मा नीचे बैठी थीं, उनके पैरों के पास। उनके सारे बाल खुले थे और वो कुछ कह रहे थे। .... अगर बहुत सख्ती करेंगे तो प्रिंसीपल से कह दूंगी।' लड़कियों की यह बातें और हंसी सुन कर सुषमा चकरा जाती है। उसके गाल तपने लगे और उसका मन किया कि वह धरती फटकर उसे निगल जाए। उसे लगा उसकी सारी शक्ति खत्म हो गयी है। सुषमा नील को इस घटना के बारे में बताती है वह कहती है – 'मुझे दुख यह है कि नील की मैंने इन लड़कियों के लिए कितना किया। जब तक कि कोई बहुत आवश्यक न हो, मैं दंडित नहीं करती। उन्हें प्यार से समझाती हूं, उनकी सुख–सुविधाओं का ख्याल रखती हूं और उन्होंने मुझे यह दिया .... मेरे कमरे में झांका।' लड़कियां दूसरी अध्यापिकाओं से यह भी पूछती हैं कि मिस सुषमा शर्मा विवाह कब करेगी।

कालेज की परिवेश का वर्णन करते हुए लेखिका ने कालेज की अन्य बातों को भी उजागर किया है। कुछ लड़कियों और अध्यापिकाओं ने प्रिंसीपल से सुषमा की शिकायत कर देती हैं। प्रिंसीपल के मन में सुषमा के प्रति आदरभाव था। उसने किसी प्रकार का शोर न मचा

कर उसे समझा दिया और उसे वार्डन के पद से इस्तीफा देने को कहा। इस बात से सुषमा बहुत निराश हो जाती है। वह फैसला करती है कि वह इस कालेज की नौकरी छोड़ देगी। नील उसे नौकरी छोड़कर अपने साथ विवाह करने को कहता है। अपनी मजबूरियों को जानते हुए वह स्वयं को संयत करती हुई कहती है – 'नहीं नील, नहीं, यह कालेज, ये खम्भे, मेरी डेस्टिनी है, मुझे यहीं छोड़ दो।' सुषमा ने नील से अपने सम्बन्ध तोड़ लिए। इस सदमे को वह झेल नहीं पायी। वह चुप रहने लगी। उसे छात्राओं की फुसफुस सुनती है तो बेचैन हो जाती है। लेखिका ने सुषमा की मनः स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है – 'समूह में खड़ी प्रत्येक लड़की ने लक्ष्य किया कि सुषमा में कुछ परिवर्तन आ गया है। उसके ओंठ मुस्कुराते हैं, आंखें नहीं। आंखों में तो ऐसा तीव्रदाह होता है कि देखने वालों को स्वयं ही आंखें झुकानी पड़ती हैं। लड़कियों को लगाकि उनसे कुछ अमार्जनीय अपराध हो गया है। उन्हें वह दिन याद आते जब सुषमा उन्हें बहुत तन्मयता से पढ़ाती थी। वह कभी क्लास में नोट्स नहीं लाती थी। शब्द शब्दों से जुड़ते जाते और वाक्य अबाध गति से फिसलते रहते। लड़कियों की कलमें कागजों पर दौड़ती रहती और इतिहास में जीवन आ जाता। समय कैसे बीत जाता, इसका आभास किसी को न रहता। अब सुषमा हाजिरी लेकर लेक्चर प्रारंभ करने से पहले कागज निकालती तो लगता कुछ अनहोनी सी हो रही है। सुषमा बोलते बोलते अटक जाती है और प्रश्नपूर्ण विस्मित आंखों को देखती हुई पूछती है – हां, तो मैं क्या कह रही थी? लड़कियों को लगता है कहीं कुछ खो गया है। सुषमा का लेक्चर तो ठीक रहता है, पर उसमें जान नहीं होती, न ध्यान को पकड़–बांधनें की शक्ति।' सुषमा यह जानती है कि उसके पढ़ाने से छात्राएं सन्तुष्ट नहीं होती पर वह नील के बिना कुछ भी नहीं है – 'केवल एक छाया, एक खोए हुए स्वर की प्रतिध्वनि, और अब ऐसी ही रहूंगी, मन की वीरानीयों में भटकती हुई।'

हमारे समाज में ऐसी बातें होना बहुत स्वाभाविक हैं। ऐसी बातों का मन और आत्मा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। शैक्षणिक संस्थाओं में इस तरह का परिवेश अक्सर मिलता है। इसके द्वारा लेखिका ने सामाजिक, समस्याओं का चित्रण करके एक सच्चा चित्र प्रस्तुतत किया है। ये सब बातें हमारे समाज का अनिवार्य अंग हैं जो स्त्री के लिए अभिशाप बन जाते हैं।

3. आर्थिक तंगी का वर्णनः– इस उपन्यास में एक कालेज की शिक्षिका की जिन्दगी की दुखद स्थिति का चित्रण करने के साथ–साथ लेखिका ने भारतीय मध्यवर्गीय समाज की आर्थिक तंगियों का सहज वर्णन किया है। सुषमा शिक्षिता और अर्जिका का है। उसे किसी वस्तु की कभी नहीं पर वह आर्थिक समस्याओं के कारण अभिशापित जीवन जीने पर मजबूर है। इन तंगियों का कारण उसका परिवार है। कथा के अनुसार सुषमा के पिता पक्षाघात से पीड़ित हैं, कोई काम नहीं करते। परिवार में चार भाई–बहन और एक कमजोर मां है। माता–पिता चाह कर भी सुषमा का विवाह नहीं कर सकते क्योंकि उसकी आय से खर्च चलता है। भाई बहनों की पढ़ाई, उनकी शादियां एवं घर खर्च के लिए पैसा चाहिए जिसका एक मात्र

साधन सुषमा की आय है। यह समस्या सुषमा के जीवन पर एक गहन अंधकार की तरह छा गयी है। इस अमेघ, सर्वग्रासी एवं भयानक अंधकार में से बाहर आना सुषमा सुबह से शाम तक कालेज तथा हास्टल के कामों में लगी रहती है। खाली समय में उपन्यास पढ़ कर अपना मनोरंजन कर लेती है। उसके रिश्तेदार मां को सुषमा का विवाह करने को कहते हैं तो वह बड़े आराम से उत्तर देती हैं – 'सुषमा की शादी तो अब हमारे बस की बात रही नहीं। इतना पढ़ लिख गई है? अच्छी नौकरी है और अब तो क्या कहने हैं, होस्टल मे वार्डन भी बनने वाली है। बंगला और चपरासी अलग से मिलेगा, बताओं इसके जोड़ का लड़का मिलना तो मुश्किल ही है। तुम्हारे जीजा तो कहते हैं, जिससे मन मिले, उसी से कर ले। हम खुशी–खुशी शादी में शामिल हो जाएंगे।' ऐसी बाते मां सिर्फ कहने के लिए कहती है। वह सुषमा का विवाह नहीं करना चाहती। जब कृष्णा की मौसी उसे समझाती है कि – 'कुछ अपने बारे में भी सोचा सुषमा! यह भाई–बहन किसी के नहीं होते। सब अपने–अपने घर के होंगे। आज की दुनिया में कौन किसाका होता है।' सुषमा मौसी को परिवार की आर्थिक स्थिति के बारे में बताती है – 'पर इन सबको भी तो मदद की जरूरत है मौसी। पिताजी को पेंशन मिलती ही कितनी है? उसमें तो दो वक्त की दाल–रोटी भी न चले। मैं भी अगर न करूंतो किसके आगे हाथ फैलाएंगे? .... मैं जो करती हूं, कर्त्तव्य समझकर नहीं मौसी, उनके प्यार में करती हूं। मेरा तो मन होता है कि मेरे पास अगर कुछ और होता तो और भी करती।' सुषमा का मानना है कि उसके पिता ने उसे कुछ बनाया है तो उसे भी उनके आर्थिक संकट को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। मां लोगों से यह कह देती है कि सुषमा विवाह करने को राजी ही नहीं होती।

हमारे समाज में अर्थ की समस्या के कारण बहुत सी योग्य लड़कियां इस स्थिति से गुजर रही हैं। सुषमा नौकरी करे, मां की इस इच्छा पर सुषमा उपेक्षित सा महसूस करती है क्योंकि उसने सुषमा के भविष्य की कभी कोई चिन्ता नहीं की। वह सुषमा को कम खर्च की चेतावनी देती रहती है – 'तुम बहुत फिजूलखर्च होती जा रही हो, जरा हाथ दबा कर खर्च किया करो।' सुषमा चिढ़ कर कहती है – पहले शादी तय करो। वक्त आने पर रूपया भी हो ही जाएगा।' सुषमा के यह कहने पर कि वह कर्ज ले लेगी और बाद में चुकाती रहेगी मां कहती है –'तुम क्यों लोगी, नीरू तुम्हारी जिम्मेदारी थोड़ी ही है। बाप हैं, सो करेंगे।' पिता की आर्थिक समस्या को लेखिका ने बड़े मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है – 'मां का क्या दोष! उनकी बात पर झुंझलाना अपने मन की गांठ को स्वीकार करना है – वह गांठ जो सबसे छुपाकर सुषमा पालती आई है। वह एक तरूण किशोरी का स्वप्न था। जोकि अनुकूल जलवायु न पा कुम्हला गया था।'

सुषमा परिवार की आर्थिक कमजोरी को समझती है। जब भी घर जाती है, सबके लिए जरूरत का सामान ले जाती है। जब सुषमा बी.ए. में पढ़ती थी तो उसका रिश्ता तय हो गया

था। परन्तु उसके पिता ने इस विवाह हसे आनाकानी कर दी। वह रिटायर होने वाले थे। उन्हें आशा थी कि सुषमा पढ़—लिख कर नौकरी करके उनका हाथ बंटाएगी। लेखिका के शब्दों में — 'इस ज्ञान से सुषमा के अन्दर न जाने कितना कड़वापन भर दिया। उसकी शादी नहीं होगी, यह उसके कल्पना ही नहीं की थी। पर उस समय वह न जाने कितनी दृढ़ हो गई। नौकरी के लिए उसे कितना भटकना पड़ा और अब इस नौकरी को पाकर उसे लगा कि तूफान से बचकर उसकी जीवन — नौका एक शान्त बन्दरगाह पर आ पहुंची।' जीवन में कभी सुषमा ने मुहल्ले में रहने वाले नारायण के प्रति प्रेम अनुभव किया था। नारायण की मां इस रिश्ते के लिए राजी नहीं हुई थी क्योंकि सुषमा के घर की आर्थिक स्थिति उसे भूली नहीं थी। काफी समय बाद जब सुषमा उससे मिली तो बच्चों का बाप हो चुका था। अब उसमें सुषमा के प्रति कोई आकर्षण या प्रेम भाव बाकी न था। यह देखकर सुषमा को दुख हुआ था। जब नारायण का विवाह उससे नहीं हो पाया था वह कई दिन रोती रही थी।

सुषमा नील के साथ बहुत प्रसन्न रहती है। वह जानती है कि नील उस पर जान छिड़कता है पर अपने परिवार की समस्याओं को एक क्षण के लिए भी नहीं भुला पाती। वह नील से कहती है — 'तुम नहीं समझोगे नील, पिता जी आरंभ से ही बड़े ढीले—ढाले व्यक्ति रहे हैं। उनसे कुछ करते नहीं बनता। अम्मा मुझ पर ही आश्रित हैं।' नील द्वारा यह कहने पर कि उसका परिवार उससे अनडयू एडवांटेज ले रहा है,वह रो पड़ती है। एक तरफ सुषमा का उत्कट प्यार है, उसे नील का सहारा है दूसरी तरफ पिता की परिवार की आर्थिक समस्याएं हैं। वह अपनी सहेली मीनाक्षी को भी इन मजबूरियों से अवगत कराती है। मीनाक्षी उसे इसे मुक्त होकर अपना जीवन जीने की सलाह देती है। 'पर यह कब तक चलेगा? तुम अपने बारे में भी तो सोचो .... जो तुम्हें जीवन में मिल रहा है, उसे स्वीकार क्यों नहीं कर लेती।'

हमारे समाज में फैले आर्थिक अभाव कई समस्याओं को जन्म देते हैं। लेखिका ने मध्यवर्गीय समाज के परिवेश का बड़ा सजीव एवं स्वाभाविक चित्रण किया है। सुषमाके रिश्तेदार उसके त्याग की प्रशंसा करते हैं। नीरू के विवाह पर सुषमा छह हजार रूपए खर्च के लिए देती है जिसमें से वह अपने प्राविडेंट फंड से कर्ज भी लेती है। शादी के बाद दिल्ली लौटते समय वह मां की गांद में सिर रख कर बहुत रोती है। इस विवाह के लिए उसने अपने प्रेम को ठुकरा दिया। अपना दुख मीनाक्षी के पास प्रकट करती हुई वह कहती है — 'नील को मैंने अपने जीवन से उखाड़ फेंका है। वह तो एक पागलपन था, मैडनैस।' वह नील को ठुकरा कर पर हर पल उसकी प्रतीक्षा करती है। वह मीनाक्षी से कहती है— ' मैंने एक बार मीरा दी से कहा था, जिन्दगी हमें तरह तरह से छलती है। मैंने ठीक किया न मीनू, देखो नील ने कितने दिन से कोई खबर नहीं ली। अब तो सबके दिलों में ठंडक पड़ गई होगी। .... कोई ऐसी दवा हो जिससे मैं सब कुछ भूल सकूं, तभी मुझे चैन मिल पाएगा।' जीवन की आर्थिक

समस्याएं सुषमा के जीवन को समाप्त कर देती हैं। नील के प्रेम को ठुकरा कर भी वह उसे भूल नहीं पाती। लेखिका ने सुषमा की एक दुखदायी स्थिति को समझते हुए लिखा है – 'सुषमा की आंखों में चमक थी, सायास रोके हुए आंसुओं की, और मीनाक्षी की आंखों में करूणा थी। केवल वह समझती थी कि सुषमा कितना झेल रही है। दुनिया के सामने उसने बड़ा ही संयत रूप प्रस्तुत किया था। जैसे नील मात्र परिचित था। पर मीनाक्षी ने उन रंगीन वस्त्रों, केश विन्यास और प्रसाधनों के पीछे की यथार्थता देखी थी। एकान्त में बैठी सुषमा के मुख पर अव्यक्त वेदना, रात में टूटते तारों की तरह आंसू और पकड़े जाने पर उसकी झेंपी सी हंसी भी देखी थी।

नील अंतिम बार उससे मिलने आता है और उससे मान जाने की आशा करता है। सुषमा की विवशताएं उसे ऐसा करने का साहस नहीं देती। लेखिका ने उसकी मजबूरी का वर्णन बड़े मार्मिक शब्दों में किया है – 'उस समय जैसे पागल तरंगों ने उसे तट पर लाकर पटक दिया और उसके खंड –खंड होकर चमकती रेत में मिल गए। उससे नील की वह दृष्टि सही नहीं गई उसने हाथ बढ़ाकर नील का हाथ पकड़ना चाहा, पर ऐसा नहीं किया। वह नील से यह भी न कह पाई कि तुम मुझे भुला देना, या समय सब भुला देगा। सांत्वना के ऐसे घिसे–पिटे शब्द उसकी होंठो पर न जाए। वह जानती थी कि कुछ रेखाएं ऐसी भी होती हैं जिन्हें समय भी नहीं मिटा सकता। भूलना क्या होता है? मन समझाने की बातें, कायरों के बहाने! जो कुछ नील ने उसे दिया और जो कुछ नील ने उससे पाया, उस विनिमय ने उन लोगों को साधारण व्यक्तियों से अपांक्तेय कर दिया। दैनिक कार्यों में रत होकर, रिश्ते नाते निभाते हुए भी, अब वे पहलेसे नहीं हो पाएंगे, क्योंकि उनका कुछ अंश एक दूसरे के पास रह जाएगा .... किसी छोटी सी बात, किसी की हंसी, किसी को देखने का ढंग या किसी अपरिचित की कमीज के रंग से नील फिर जी उठेगा, अलग होने के बाद रहना, राख से ढंके कोयलों पर चलना होगा, न जाने कौन–सा अंगारा दहकता रह जाए और पांव को जला दे।'

जीवन की इस विडम्बना और त्रासद स्थिति का एक मात्र कारण है आर्थिक अभाव। सुषमा नील को अपना कर सुखी जीवन जी सकती थी यदि उसे परिवार की आर्थिक विषमताओं में जकड़ा ना जाता। वह चाह कर भी नील को पा नहीं सकी। उसके अन्तर्मन से निकली पुकार – 'नील, अब तुम जाओ' ऐसा यथार्थ बन गई जिसका सामना उसे हर हालत में करना पड़ेगा। यदि सुषमा के माता–पिता को आर्थिक तंगी न होती तो वह नील के साथ सुखमय जीवन व्यतीत कर सकती थी। उसका एक सुखमय संसार होता। उपन्यास में ऐसे परिवेशका चित्रण करने में लेखिका पूर्ण रूप से सफल रही है। उपन्यास को पढ़ते समय पाठक के सामने उपन्यास की प्रमुख समस्या – आर्थिक कमियों में पिसती एक स्त्री की दुखद स्थिति सहज ही उभर आती है। यह स्थिति विभिन्न सामाजिक विसंगतियों एवं विकट समस्याओं को

भी स्पष्ट करती है। इन परिस्थितियों की भयावहता से गुजरती सुषमा का लेखिका ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

संवादः— किसी भी रचना की कथावस्तु के विकास में पात्रों का विशेष स्थान हुआ करता है। उनके संवादों द्वारा उनके चरित्र का बोध तो होता ही है, इनके माध्यम से कथा विकसित भी होती है। रचना में जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को लेखक पात्रों के संवादों द्वारा ही प्रस्तुत करता है। पात्र परस्पर बातें करते हुए इन संवादों द्वारा कथा को सुन्दर रूप देते हैं। कभी—कभी पात्रों के संलाप (अपने से की गई बातें भी कथा को नया आयाम देती है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास में दोनों प्रकार के संवाद मिलते हैं। मुख्य रूप से सुषमा तथा नील, सुषमा तथा मीनाक्षी और सुषमा तथा मां के संवादों के माध्यम से कथा स्पष्ट होती है। बहुत से स्थानों पर सुषमा के संलापों द्वारा कथाका स्वरूप सामने आता है। मानसिक वेदना की स्थिति में स्वगत संलापों में सुषमा की मनः स्थिति को उजागर करने में लेखिका पूर्णया सफल हुई हैं।

(क) सुषमा और मीनाक्षी के संवाद — उपन्यास के अधिकांश भाग में सुषमा और मीनाक्षी के बीच वार्तालाप चलता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि ये दोनों पक्की सहेलियां हैं। उपन्यास के आरंभ में ही सुषमा के वार्डन बनने पर वह उसे लड़कियों के प्रति सख्ती बरतने को कहती है — 'ऐसे उसे लड़कियों के प्रति सख्ती बरतने को कहती हैं — 'ऐसे तो तुम काम कर चुकी। लड़कियों के साथ डील करने में इतनी समस्याएं आएंगी कि ....' सुषमा के यह कहने पर कि अब वह बहुत व्यस्त रहने लगी है वह उसका मजाक उड़ाती है — 'तुम ऐसा कौन काम करती थी कि अब नहीं कर सकती? क्या वह सस्ते उपन्यास पढ़ने का समय नहीं मिलता?' मीनाक्षी अन्य अध्यापिकाओं के बीच बड़े रोब से बात करती है। वह अग्रवाल मैडम से कहती है कि 'नौकरी है कि घर की खेती? बेबी का ख्याल है तो घर बैठें।' उसके संवादों से सुषमा के स्वभाव की जानकारी भी मिलती है 'सब तुम्हारी मलमलसाहत का फायदा उठाते हैं। तुम बहुत उदार हो सुषमा! अरे बेबी है तो रोए —हमारे बेबी नहीं हैं तो वक्त—बेवक्त हम ही काम में लगे रहें।' मीनाक्षी सुषमा के प्रति स्नेह रखती है वह चाहती है कि सुषमा औरों की तरह अच्छी और सुखी जीवन जिए। वह कहती है — 'सुषमा तुम्हें तो शादी कर लेनी चाहिए। तुम ऐसी जिन्दगी के लिए नहीं बनी हों।' जब सुषमा और नील के सम्बन्धों की चर्चा कालेज कैम्पस पर होती है तो वह उसका उपहास न करके उसे चेतावनी देती है। वह सुषमा को सावधान भी करती है — 'मिस शास्त्री सबसे आगे बढ़ बढ़ कर बोल रही थीं। सबने खूब रस लिया। तुम कब जाती हो, कब तुम्हारे यहां कौन आता है, किसने तुम्हें सिनेमा में देखा, किसने क्लब में — सबका सब वर्णन हुआ।' सुषमा के उदास होने पर वह उसके साथ बाहर घूमने जाती है। स्टाफ रूम में जब भी मिस शास्त्री उसकी सहेली सुषमा के बारे में व्यंग्य करती है तो वह कहती है — 'देखिए दुर्गा दी, यहां बैठकर आपको किसी पर

रिमार्क देने का अधिकार नहीं है।' जब सुषमा और नील के सम्बन्ध के बारे में सभी तरफ चर्चा शुरू हो जाती है तो वह अच्छी सहेली की तरह उसे समझाती हैं – 'सुषमा, तुम भी शादी कर लो' सुषमा के यह कहने पर कि 'मुझे धनी व्यवसायी कहां मिलेंगे? वह उत्तर देती है – 'तुम्हें उनकी जरूरत कहां है। तुम तो स्वयं अपने सुख में धनी हो, अगर कोई मेरा अपना होता –जितने कि तुम्हारे हैं – तो मैं अपने को बहुत भाग्यशाली समझती' इन संवादों के माध्यम से कथा की मूल समस्या को उभारा है। सुषमा नौकरी करती है, स्वावलम्बी है, उसका परिवार भी है, उसके विवाह में तो रूकावट होगी ही नहीं चाहिए थी। सुषमा के यह कहने पर कि वह नील से पांच साल बड़ी है, इसलिए उससे विवाह नहीं करती, मीनाक्षी कहती है – 'यह कोई भारी कठिनाई नहीं है, उन्हें पता तो होगा न।' सुषमा उत्तर देती है – 'नील को मैंने अपने जीवन से उखाड़ फेंका है। वह तो एक पागलपन था, एक मैडनेस' मीनाक्षी सुषमा को सलाह देती है – 'सुषमा तुम कुछ दिन छुट्टी लेकर कहीं चली क्यों नहीं जाती। घर चली जाओ। तुम यहां कब तक घुटती रहोगी? सुषमा अपने मन की व्यथा को केवल मीनाक्षी के सामने प्रकट करती है। दोनों के संवादों के माध्यम से पाठक को उपन्यास के मूल विषय का ज्ञान सहज ही हो जाता है। सुषमा अपने गहरे अवसाद के क्षणों में मीनाक्षी से कहती है – 'कोई ऐसी दवा हो जिससे मैं सब कुछ भूल सकूं, तभी मुझे चैन मिल जाएगा। हर रोज जब मेरे सामने वही चेहरे पड़ते हैं तब मेरा दुख हर रोज नया हो जाता है।'

सुषमा मीनाक्षी को बताती है कि नील विदेश जा रहा है। मीनाक्षी एक बार फिर उन्ळें मिलाने का प्रयत्न करती है – 'तुम एयरोड्रोम जाओगी।' वह नील की फ्लाइट का समय पता करके उसके लिए टैक्सी भी मंगवा देती है। दोनों के परस्पर वार्तालाप के माध्यम से लेखिका ने उपन्यास की कथा को विकसित किया है।

(ख) सुषमा और नील के संवाद – सुषमा और नील एक दूसरे से प्रेम करते हैं। उपन्यास के आरंभ में ही लेखिका ने इस बात का परिचय उनके संवादों द्वारा दिया है। दोनों की पहली भेंट तब होती है जब नील कृष्णा मौसी द्वारा भेजी गई साड़ियां देने सुषमा के कालेज में जाता है। इनके परस्पर आकर्षण का परिचय पाठक को मिलता है जब अगले ही दिन वह अपनी बुआ के साथ उससे दोबारा मिलने आ जाता है। दोनों के वार्तालाप से पाठक को उनके आपसी रिश्ते का आभास होने लगता है –

नील – 'बुआ, इन्होंने मुझे छोटा सा कोकाकोला पीने वाला लड़का समझ लिया था। मुझे देखकर बहुत चकराई।'

सुषमा – 'और आपने नहीं, मुझे बूढ़ी, सूखी वार्डन समझ रखा था।'

नील – 'पता नहीं आप कैसे अनुशासन रख पाती होंगी। मैं तो आपसे बिल्कुल भी न डरूं।

सुषमा – 'मैं आपको होस्टल में रखूंगी ही क्यों?' नील और बुआ से स्नूहपूर्ण व्यवहार पाकर सुषमा प्रसन्न हो उठी।

उपन्यास के आगामी भाग में सुषमा और नील की निकटता बढ़ती है जिसका परिचय उनके वार्तालाप से मिलता है। एक दिन नील सुषमा से मिलने आता है। सुषमा उससे औपचारिक बातें करती है जिसमें उसे पता लगता है कि नील के घर उसकी मां है और एक बहन। सुषमा उसे कहती है – 'आप तो इतने अस्थिर मन है, कोई कहेगा कि मत आओ तो आएंगे, रूकने को कहा जाएगा तो चले जाएंगे।'

नील – ' नए आपने बुलाया, न रोका, जबरदस्ती आया था, जबरदस्ती चला गया।'

सुषमा नील की निकटता अनुभव कर भाव विभोर हो उठती है –

नील – 'क्या सोच रही हैं?'

सुषमा – कुछ नहीं खम्भे गिन रही हूं।

नील – कितने खम्भे हैं?

सुषमा – आप ही गिन लीजिए।

नील – यहां रहना अच्छा लगता है? आप तो चुप बैठी हैं।' मैं आपके बारे में कुछ नहीं जानता, सिवा इसके कि आप मुझे बहुत अच्छी लगती हैं।

नील एवं सुषमा के इन संवादों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नील सुषमा को चाहता है। एक अन्य मुलाकात में भी नील सुषमा की बातों से उसकी मजबूरियों को जानने का प्रयास किया –

नील – मैं बहुत देर से देख रहा हूं कि तुम अपलक दूर न जाने क्या देखे जारही हूं, मैं जैसे तुम्हारे पास हूं ही नहीं।

सुषमा – 'तुम मेरे पास होते हो तो मुझे मौत भी बहुत अर्थपूर्ण लगती है।'

नील – मुझे अक्सर लगता है कि सुषमा कि तुम्हारे जीवन को पूरी तरह से ढंक नहीं पाया हूं। मैं तुम्हारे अस्तित्व की केवल परिधि को छू सका हूं। .... यह मैं कभी न बता सकूंगा कि तुम मेरे लिए क्या बन गई हो। नील से अपनापन पाकर सुषमा उससे मन की बात बताती है –

सुषमा – पिताजी आरंभ से ही बड़े ढीले ढाले व्यक्ति रहे हैं। उनसे कुछ करते नहीं बनता। अम्मां मुझ पर आश्रित रहती हैं।

नील – मुझे लगता है सुषमा कि तुम्हारा परिवार तुम्हारा अनडयू एडवांटेज ले रहा है। तुम्हारे भाई–बहन, तुम्हारे माता–पिता की जिम्मेदारी हैं, तुम्हारी नहीं।'

सुषमा और नील के संवादों में से इस बात का परिचय भी मिलता है कि सामाजिक मर्यादाओं एवं पारिवारिक बन्धनों के कारण सुषमा नील को स्वीकार नहीं कर सकती। सुषमा अपने हालातों से तंग है और नील से बहुत प्रेम करती है। वह नील से कहती है –

सुषमा – मेरे जीवन के कई ऐसे पहलू हैं, जिनके बारे में मैंने तुम्हें कुछ नहीं बताया, बताना नहीं चाहा, क्योंकि मैं नहीं चाहती थी कि वह काली छाया तुम्हें भी ढंक ले। पर नील, पिछले

ग्यारह सालों से मैं जिन्दगी से निरन्तर लड़ रही हूं। .... यह नौकरी मेरे लिए बहुत कीमती है। निर्धन मैं भले ही रही होऊं, पर स्वाभिमानी भी बहुत रही। जीवन में कभी कभी ऐसे अवसर भी आए, जबकि मैं अपने शरीर के मोल से धन और आराम पा सकती थी। पर वह मैंने स्वीकार नहीं किया। एम.ए. करने के बाद मैंने एक प्राइवेट कालेज में नौकरी की। वहां के सेक्रेटरी नगर के पुराने रईसों में थे। उन्होंने किस वस्तु का प्रलोभन नहीं दिया मुझे, पर मैंने वह नौकरी छोड़ दी। जब मैंने मां को बताया कि मैंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया है तो उन्होंने पूछा – और इन बच्चों का क्या होगा। मां ने मुझे सहारा नहीं दिया, ढ़ांढ़स नहीं बंधाया। हर बार जब वह अपना कोई आभूषण बेचने को निकलती तो मुझे ऐसी दृष्टि से देखतीं जैसे उन सब मुसीबतों के लिए उत्तरदायी मैं थी। .... कभी कभी सोचती हूं कैसी मां है मेरी .... मैं केवल साधन हूं। मेरी भावना का कोई स्थान नहीं। विवाह करके परिवार को निराधार छोड़ना मेरे लिए संभव नहीं है। मैंने अपने को ऐसी जिन्दगी में ढाल लिया है। तुम चले जाओगे तो मैं फिर अपने को उन्हीं प्राचीरों में बन्दी बना लूंगी।

सुषमा का यह संवाद कथा का परिचय देने में सफल है। नील सुषमा के लिए उपहार लाता है। सुषमा को नील हर तरह से प्रसन्न रखना चाहता है। सुषमा भी उससे बहुत प्रेम करती है। उसके निकट आना उसे अच्छा लगता है। वह कहती है –

सुषमा – जो तुम हो मेरे लिए, यह कोई और कैसे हो सकता है? नील उसे बाहर घुमाने ले जता है –

नील – कहां जाना है सुषमा?

सुषमा – कहीं भी नहीं। मैं वहां से निकल कर भागना चाह रही थी। मेरा उस वातावरण में दम घुट रहा था।

नील उसे अपनी आंट के घर ले जाता है। सुषमा उनके घर की प्रशंसा करती है। नील कहता है –

नील – मैं जब दिवास्वप्न देखता हूं तो तुम्हारे घर का ही चित्र आता है ...... वही घर, जहां जीवन में पहली बार जाना कि सुख और पूर्णता क्या है। कभी कभी मुझे अपने ऊपर आश्चर्य होता है कि तुम्हारी सी युवती का प्यार पाने में मैं कैसे सफल हो गया ....

सुषमा – मेरे पास कुछ भी नहीं था देने को। उस दिन मेरे मन में पहली बार कचोट हुई कि मैं क्यों नहीं सुन्दर, बहुत युवा हुई ....

नील – जब तुम्हें देखता हूं तो मेरे मन में बहुत अभिमान जाग उठता है। मुझे कभी कभी लगता है कि मैंने तुम्हें जाना ही नहीं, पाया ही नहीं। अभी तुम्हारा हाथ छुऊंगा तो मेरे मन में फिर अदम्य लालसा जाग उठेगी।

सुषमा – तब तो तुम बड़े खतरनाक हो। नील तुम्हारे सामने मैं क्यों इतनी अवश हो जाती हूं, मैं सब कुछ भूल जाती हूं, सारी पीड़ा सारी कचोट। मेरा मन इन सबसे दूर जाने को करता

है।

नील – मैं तुम्हें घर में बन्दी बना कर रखूंगा, जिससे किसी की दृष्टि भी न पड़ सके। मुझे डर लगता है कि तुम मुझसे छिन न जाओ।

सुषमा – तुम्हें? तुम्हें डर लगता है? डर तो मुझे लगना चाहिए कि कहीं कोई अठारह बीस बरस की सुन्दर लड़की तुम्हें छीन न ले।

नील – पगली! मेरे हालैंड जाने की बात चल रही है फर्म की ओर से। अगर जाना हुआ तो तुम्हें साथ लेकर जाऊंगा।

नील के बार बार कहने पर भी सुषमा उसे अपना नहीं सकती और उसे अपने पास आने के लिए मना करती है। उपन्यास के अन्त में नील फिर आता है और कहता है –

नील – क्या मेरे लिए कोई आशा नहीं है? तुम मेरे प्रति इतना क्रूर हो गई हो?

सुषमा – जब हम फूल की पंखुड़ियां नोच कर फेंक देते हैं, तब फूल को कैसा लगता होगा मैं अब समझ पाई हूं। उन नुची पंखुडियों के ढेर पर बैठी हूं।

नील – तुम्हारा निश्चय दृढ़ है?

सुषमा – नहीं नील, अब तुम जाओ। जाओ नील, जाओ।

पूरे उपन्यास में लेखिका ने नील और सुषमा के असफल प्रेम सम्बन्धों का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। परिवार की सुख–सुविधाओं के लिए अपने सुखों का बलिदान देना एक स्त्री द्वारा ही सम्भव हो सकता है। सुषमा ने सवयं को एक अच्छी बेटी और बहन के रूप में प्रस्तुत किया है। नील को भुलाना उसके लिए संभव नहीं है। उससे दूर जाकर वह पूरी तरह टूट जाती है। वह चुप चाप नौकरी करती रहती है और किसी भी क्षण नील का ख्याल अपने मन से निकाल नहीं पाती। सुषमा की इस मनोवस्था का वर्णन लेखिका ने उसके स्वागत भाषण द्वारा किया है। वह अपने मन की बात किसी से नहीं कर पाती। अन्दर ही अन्दर घुलती रहती है। नील के विदेश चले जाने के बाद उसे लगता रहता है कि नील उसके पास आया है। उपन्यास का आरंभ ही लेखिका ने सुषमा की इस स्थिति के वर्णन से किया है। रात के घुप अंधेरे में वह चौंक कर पुकारती है – 'नील'। लेखिका के शब्दों में – 'सुषमा को लगा कि उसके प्राणों और रात्रि की आत्मा में घना साम्य है।'नील से सम्बन्ध टूटने पर वह गहरे अवसाद से घिर जाती है। जब प्रिंसीपल उसे इस्तीफा देने को कहती है तो वह बेचैन हो उठती है। वह बुदबुदाती है –

'नहीं रोऊंगी। मैं यहां से चली जाऊंगी। कहीं और नौकरी कर लूंगी, पर नील को अपने जीवन से दूर करना मेरे वश का नहीं।' जब आखिरी बार वह नील को इंकार करती है तो उसे लगता है कि वह पागल हो जाऐगी। नील आखिरी बार उससे मिलने आता है। सुषमा अपनी असमर्थता प्रकट करती है। निराश होकर नील लौट जाता है। सुषमा अपने आपसे बातें करती है – तुम क्यों चले गए नील, तुमने खटखटाया क्यों नहीं? तुमने जिद क्यों

नहीं की, तुम पहले तो इतने हठीले थे। जिस रात नील ने विदेश जाना था, सुषमा पूरा दिन कालेज के किसी कार्यक्रम में व्यस्त रही। उसकी फ्लाइट का समय पास आते ही वह घबरा कर मीनाक्षी से बोली – मुझे एक काम से बाहर जाना है .... मीनू प्लीज़ एक टैक्सी मंगा दो। वह नील से आखिरी बार मिलने को तड़प उठी पर न जाने क्या सोचकर वह जा नहीं पाई। लेखिका ने सुषमा की तड़प का वर्णन बड़े मार्मिक शब्दों में किया है।

पाठ संख्या : 2.4 लेखिका : डा. हरिसिमरन कौर

उपन्यास की संरचना और उद्देश्य

इस पाठ में उपन्यास 'पचपन खम्भ लाल दीवारें' का संरचनागत अध्ययन करते हुए इस की मुख्य उद्देश्य पर भी विचार किया जाएगा। प्रत्येक रचना का लेखक विभिन्न प्रकार की घटनाओं, स्थितियों एवं पात्रों के मनोभावों का चित्रण करता है, जिसके लिए उसे रचना की संरचना अर्थात् बनावट के प्रति सचेत रहना पड़ता है। इस संरचना के लिए वह एक कथावस्तु चुनता है, उसमें पात्रों का चुनाव करके कथा को एक परिवेश विशेष से जोड़ता है। रचना में अपने विचारों एवं अनुभवों को व्यक्त करने के लिए उसका सबसे महत्वपूर्ण माध्यम होता है—भाषा। पात्रों की पारस्परिक बातें, उनका चरित्र–चित्रण, कथा का विकास एवं उद्देश्य आदि की प्रस्तुति भाषा द्वारा ही संभव होती है। कथावस्तु के अनुसार शैली का चुनाव भी किया जाता है। किसी भी रचना की संरचना या शिल्प में भाषा एवं शैली का विशेष महत्व होता है।

(क) भाषा : इस उपन्यास की भाषा अत्यन्त स्वाभाविक एवं सहज है। लेखिका ने उपन्यास की मुख्य समस्या को बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उपन्यास का आरंभ ऐसे ढंग से किया गया है कि पहले भाग को पढ़ने के बाद पाठक की उत्सुकता जाग उठती है कि सुषमा के जीवन में आई निराशा का क्या कारण होगा। कथा के आरंभ से लेकर अन्त तक पाठक की यह उत्सुकता बनी रहती है। लेखिका ने बड़े प्रभावपूर्ण शब्दों में उपन्यास का आरंभ किया है। सुषमा की मनः स्थिति के अनुसार शब्दों का चयन करती हुई वे लिखती है— ''सुषमा को लगा जैसे नील आकर सिरहाने खड़ा हो गया है, फिर उसने झुक कर, धीरे से उसके बाल छुए हैं। सुषमा चौंक कर उठ बैठी। चारों ओर घुप अंधेरा था। उसने कांपते हुए कंठ से पुकारा – 'नील!'' इतनी प्रभावपूर्ण भाषा में रचना को आरंभ करके लेखिका ने अपने अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। सुषमा की मानसिक वेदना को गहराई तक चित्रित करते हुए लेखिका ने उपयुक्त शब्दों का भावपूर्ण प्रयोग किया है – 'सब ओर सन्नाटा है, भयावह, अकेला सन्नाटा। वह अकुलाकर खड़ी हुई और उसने पूरी खिड़की खोल दी। बाहर से प्रकाश की एक फांक आकर उसके पैरों पर लोटने लगी और सुषमा छड़ों का ठंडा स्पर्श अनुभव करती हुई, अनझिप आंखों से बाहर ताकने लगी। रात्रि के वह मौन स्वर उसके चारों

ओर मंडरा रहे थे। टहनियों और पत्तों का मन्द स्वर में वार्तालाप, दूर बजते रात के घंटे, चौंककर जागे किसी पक्षी का आर्त चीत्कार! सुषमा को लगा कि उसके प्राणों और रात्रि की आत्मा में घना साम्य है। वैसे ही कुछ मद्धिम स्वरों की प्रतिध्वनियाँ गूंजती हैं, मन में कुछ करवट लेता है और चुप हो जाता है। ऐसा ही अभेद्य, सर्वग्रासी अंधकार जीवन में सिमटता आता है।''

बहुत सुन्दर भाषा और अति सुन्दर वाक्य–विन्यास सुषमा की मनोव्यथा का चित्रण करते हुए लेखिका इतनी भावुक हो गयी है कि उनकी भाषा काव्यात्मक हो उठी है। ''कुछ स्मृतियां, कुछ स्वप्न, कुछ अस्फुट शब्द, श्रमरत छात्र की तरह सुषमा बार–बार उन पृष्ठों को उलटकर दोहराती है। उन संवेगों की दहलीज पर खड़ी होकर अतीत में झांकती है, मन की संकुल गलियों में भटका करती है–हर वाक्य, हर मुद्रा और प्रत्येक स्पर्श के अनेकों संदेशों पर रुकती हुई, ठहरती हुई और उस समय इस संसार की सीमाएँ दूर–दूर हटती जाती हैं और वह अकेली रह जाती है– अपने में सम्पृक्त।''

परिवार की जिम्मेदारियों से घिरी, कालेज में छात्राओं के बीच विचरती हुई सुषमा दिन भर अनेकों कार्यों में व्यस्त रहकर भी अकेली है। उसके अकेलेपन की इससे प्रभावपूर्ण व्याख्या और क्या हो सकती है। लेखिका उसके अकेलेपन की त्रासद स्थिति का वर्णन करते हुए लिखती हैं–''अब वह उस स्थान पर आ पहुंची है, जहां पीछे मुड़कर देखने से आशाएं बड़ी खोखली नजर आती हैं और यथार्थ की प्रखरता में कोमल स्वप्न कुम्हला जाते हैं।''

उपन्यास में सुषमा के जीवन की विडम्बनाओं को बड़ी सहजता से प्रस्तुत किया गया है। नील के प्रति उसका आकर्षण एवं दोनों के प्रेम–सम्बन्धों का बड़ी शिष्ट भाषा में हुआ है। कथा में पढ़े–लिखे सभ्य समाज का वर्णन है और उसी के अनुरूप भाषा का प्रयोग है। एक स्त्री के मनोविज्ञान को समझते हुए लेखिका ने सुषमा के शिष्ट व्यवहार एवं आचरण को बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है–''नील के लिए शायद वह केवल एक आकर्षक युवती थी। शायद नील को उसकी आयु का ठीक अनुमान न था। नील को वह अच्छी लगती है, इस विचार से उसके अहम् को सन्तुष्टि सी मिलती थी। फिर नील युवा था। उसकी आंखों की स्वच्छता, उसकी हंसी का खुलापन सुषमा को अच्छा लगा था। साथ ही जीवन में पहली बार उसे उन खोए हुए वर्षों का दुख था जो जीवन की भाग–दौड़ और आजीविका के प्रश्नों के चुपचाप विलीन हो गए। वे वर्ष और अब तो उसके चारों ओर दीवारें खिंच गई थी, दायित्व की कुंठाओं की, अपने पद की गरिमा और परिवार की।''

नील और सुषमा के प्रेम–सम्बन्ध लगभग एक वर्ष तक चले। लेखिका ने एक वर्ष लम्बी कथा को एक संक्षिप्त कलेवर में समेटा है। भाषा का प्रभावपूर्ण प्रयोग इस कथा को रोचक एवं स्वाभाविक बनाने में सफल हुआ है। प्रेम–सम्बन्धों एवं मिलन के क्षणों का वर्णन

अत्यन्त शिष्ट भाषा में हुआ है। कहीं भी कुछ गलत या भद्दा प्रतीत नहीं होता। नील और सुषमा के संवाद अत्यन्त संयत एवं व्यावहारिक हैं। अपनी जरूरतों और पारिवारिक समस्याओं को समझते हुए भी सुषमा नील के प्रेम में उलझ जाती है। इसका कारण लेखिका ने केवल दो पंक्तियों में हमारे सामने स्पष्ट कर दिया हैं–'प्यार में सीमाएँ कैसे निर्धारित की जा सकती हैं? अपने को लक्ष्मण–रेखा में कैसे बांधा जा सकता है?'' नील और सुषमा के प्रेम–सम्बन्धों का वर्णन उपन्यास की कथा में विभिन्न प्रसंगों में हुआ है जिसके लिए लेखिका ने सुन्दर, स्पष्ट एवं स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया है। इनके सम्बन्धों के टूटने पर सुषमा की विवशता एवं निराशा को अत्यन्त मार्मिक शब्दों में प्रस्तुत किया है। अंतिम भेंट का वर्णन पाठक के हृदय को छू जाता है।

'नील कुछ कहते–कहते रुक गया। सुषमा ने उसे अपनी ओर विचित्र, व्याकुल दृष्टि से देखते हुए पाया।'

''तो तुम्हारा निश्चय दृढ़ है?'' नील ने पूछा। सुषमा ने सिर भर हिला दिया, वह घास नोचने लगी। उस समय उसके खंड–खंड होकर चमकती रेत में मिल गए। उससे नील की वह दृष्टि न सही गई। उसने हाथ बढ़ा कर नील का हाथ पकड़ना चाहा, पर ऐसा नहीं किया। वह नील से यह न कह पाई कि तुम मुझे भुला देना या समय सब कुछ भुला देता है। सांत्वना के ऐसे घिसे–पिटे शब्द उसके होंठो पर न आए। वह जानती थी कि कुछ रेखाएँ ऐसी भी होती हैं जिन्हें समय भी नहीं मिटा सकता। भूलना क्या होता हैं? मन समझाने की बातें, कायरों के बहाने! जो कुछ नील ने उसे दिया और जो कुछ नील ने उससे पाया; उस विनिमय ने उन लोगों को साधारण व्यक्तियों से अपांक्तेय कर दिया। दैनिक कार्यों में रत होकर, नाते–रिश्ते निभाते हुए भी, अब वे पहले–से नहीं हो पाएंगे, क्योंकि उनका कुछ अंश एक दूसरे के पास रह जाएगा...........किसी छोटी सी बात, किसी की हँसी, किसी के देखने का ढंग या किसी अपरिचित की कमीज के रंग से नील फिर जी उठेगा; अलग होने के बाद रहना, राख के ढँके कोयलों पर चलना होगा, न जाने कौन सा अंगारा दहकता रह जाए और पांव को जला दे।'' जब नील सुषमा को उसके कालेज में छोड़कर जाने लगता है तो वह उसे बैठने को भी नहीं कहती। सुषमा अपने मन पर पत्थर रहकर कहती है 'नहीं, नील। अब तुम जाओ।'' लेखिका के शब्दों में – 'उसके शरीर की पुकार जैसे कोई यथार्थ वस्तु बन गई थी और वह अपने पाँवों के नीचे उसका स्पर्श अनुभव कर पा रही थी। अगर नील ने उसे छू भर लिया तो फिर वह शापग्रस्त की तरह कभी उस मायाजाल से न निकल सकेगी।

''सुषमा!'' नील की आंखें स्वयं उसकी कामनाओं का दर्पण थीं। 'जाओ नील, जाओ! सुषमा ने अन्दर आकर द्वार बन्द कर लिए। किवाड़ पूरी तरह बन्द होने से पहले अंतिम दरार में से उसने नील के चेहरे पर जो भाव देखे, वह उसके मर्म तक बरछे की तरह घुसते चले

गए। 'जाओ नील, जाओ, जाओ!' वह अन्दर से कहती रही जब तक कि उसका स्वर एक फुसफुसाहट मात्र न रह गया। तुम चले क्यों गए नील, तुमने खटखटाया क्यों नहीं। तुमने जिद क्यों नहीं की, तुम पहले तो इतने हठीले थे। लेखिका ने सुषमा की मनोवेदना का यह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने के लिए बहुत सुन्दर प्रयोग किया है। इस वर्णन से पाठक बड़े सहज ढंग से सुषमा की मनोव्यथा को जान लेता है। सुषमा एक सच्ची प्रेमिका है। अपने कर्तव्यों को महत्व देती हुई वह नील को छोड़ देती है पर भुला नहीं सकती। उपन्यास के अन्त में वह अपनी अकुलाहट को दबा न पाने के कारण नील को एयरपोर्ट पर मिलने को आतुर हो जाती है, पर जा नहीं पाती। उपन्यास के अंतिम शब्द लेखिका के रचना कौशल का परिचय देते हैं—'सुषमा ने मुड़कर अपना बटुआ उठा लिया और दो पल उद्विग्न—सी उसकी डोरी को खोलती बन्द करती रही। फिर अचानक शान्त हो आई; उसके नेत्रों की आकुलता एक अगाध निस्तब्धता में बदल गई जैसे भयंकर शब्द करती आंधी कहीं दूर से गुजर गई।

'सुषमा टैक्सी आ गई।'' मीनाक्षी ने हल्के से उसकी पीठ पर हाथ टिकाकर कहा। उस स्पर्श से सुषमा चौंक गई। वह मीनाक्षी की आंखों में एकटक कुछ देखती रही, फिर उसने बटुआ हाथ से छोड़ दिया और कहा — टैक्सी वापस कर दो मीनाक्षी, मैं नहीं जाऊंगी। मीनाक्षी बिना कुछ कहे बरामदे की ओर बढ़ी और सुषमा अपनी पसीजी हथेली होठों पर रगड़ती हुई उन्हें पोंछने लगी।

भाषा सम्बन्धी इस विश्लेषण के बाद हम कह सकते हैं कि इस उपन्यास के विषय के अनुरुप सहज एवं स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया गया है। लेखिका ने नील तथा सुषमा के प्रेम—सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। पात्रों के अनुसार उनके संवाद प्रस्तुत किए गए हैं। मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग मिलता है जिनमें मुख्य हैं — सोंठ होना अर्थात् पत्थर हो जाना (चुप हो जाना) सब दिन चंगा त्योहारों में नंगा (समय पर ठीक काम न करना) तथा दिल में ठंडक पड़ना आदि।

इस उपन्यास में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है। लेखिका ने अधिकांश प्रसंगों का विस्तृत वर्णन करके कथा को विकसित किया है। सुषमा के स्वगत भाषणों को बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। कुल मिला कर इस उपन्यास भी भाषा—शैली अति सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण है।

उद्देश्य या प्रतिपाद्य : प्रत्येक रचना का एक उद्देश्य होता है जिसे प्रतिपाद्य या कथ्य भी कहा जाता है। यह एक प्रेम कथा है जो बड़े सुन्दर एवं आकर्षक ढंग से आरंभ होती है। लेखिका का उद्देश्य इस प्रेम कथा की असफलता के कारणों को प्रकाशित करना है। संसार में अनेकों प्रेम—प्रसंग मिलते हैं जिनका अन्त सुखद या दुखद भी हो सकता है। इन स्थितियों का कारण

अलग–अलग होता है। इस प्रेम–प्रसंग की असफलता सुषमा या नील के किसी गल्त आचरण या किसी अनहोनी के कारण नहीं है। एक स्त्री के रूप में सुषमा की मजबूरियां उसकी नियति बन गयी है। नील जैसे प्रेमी को वह पति के रूप में स्वीकार नहीं कर पाती। उसकी मजबूरियां उसके लिए विडम्बना बन गई है। वह अपने सभी चावों और कामनाओं को भूलकर अपने मन पर पत्थर रख लेती है। कुछ दिन पहले वह नील को पाकर स्वयं को खुशनसीब समझती है। नील को त्याग कर वह टूट जाती है। उसका जीवन थम सा जाता है। लेखिका का मुख्य उद्देश्य सुषमा की इस मनोव्यथा का चित्रण करना है, जिससे पाठक भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। लेखिका का पहला उद्देश्य है लड़कियों के कालेज के वातावरण का वर्णन करना। सुषमा कालेज की एक अध्यापिका एवं हास्टल की वार्डन है। इस कालेज के जीवन के सिवाय वह किसी और दुनिया को नहीं जानती। लेखिका के शब्दों में–''सुषमा उस संसार की हंसी–खुशी में डूब गई। वह फिर उन्हीं अजान राहों में भटक गई, जहाँ का हर मोड़, एक नई आशा लिए होता है। वह भूल गई थी वह कितने मोड़ पार कर चुकी है। अब वह उस स्थान पर आ पहुंची है, जहां पीछे मुड़कर देखने से आशाएं बड़ी खोखली नजर आती हैं और यथार्थ की प्रखरता में कोमल स्वप्न कुम्हला जाते हैं।''

लेखिका ने कालेज में होने वाली विभिन्न घटनाओं का उल्लेख किया है। अध्यापिकाएं हर समय एक दूसरे की टांग खींचती हैं। उनका ध्यान पढ़ाने में कम और एक दूसरे की निन्दा चुगली में अधिक रहता है। लेखिका के शब्दों में – 'स्टाफ–रूम में एकत्र सभी महिलाओं को स्वाति की बातों में वही रस आ रहा था जो महरी–महाराजिन को पड़ोसन की चर्चा में आता था।...........आप के सामाजिक मापदंड यह कहते हैं कि आप सबके सामने किसी के व्यक्तिगत जीवन की धज्जियां उड़ा दीजिए? हरेक का जीवन एक ऐसा अनुलंघनीय दुर्ग हैं जिसका अतिक्रमण करना किसी का अधिकार नहीं। हमारे समाज में ऐसी बुराइयां आम प्रचलित हैं। लोग अपनी समस्याओं में से भी दूसरों के दोष निकालने का समय अवश्य निकाल लेते हैं – ''दुनिया की यही रीति है सुषमा–दूसरे के फटे में पैर अड़ाना सबको अच्छा लगता है और हम बहुत प्रबुद्ध, प्रगतिशील महिलाएं बनने का दम भरती हैं।''

मध्यवर्गीय समाज में लोग पढ़ी–लिखी, नौकरी करने वाली लड़कियों का गल्त लाभ उठाते हैं। उनकी आय के लालच में लोग समय पर बेटियों का विवाह नहीं करते जिससे कई समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। कथा की मुख्य पात्र सुषमा के एम.ए. करने के बाद उसके मामा ने उसका एक अच्छी जगह पर रिश्ता तय किया पर सुषमा के पिता नहीं माने। वह जानते थे कि सुषमा का विवाह होने से उनकी आर्थिक व्यवस्था बिगड़ सकती है। लेखिका ने इस स्थिति के दुष्परिणामों का वर्णन किया है–''इस ज्ञान ने सुषमा के अन्दर न जाने कितना कड़वापन भर दिया। उसकी शादी नहीं होगी, यह उसने कल्पना ही नहीं की थी। पर उस

समय वह न जाने कितनी दृढ़ हो गई। नौकरी के लिए उसे कितना भटकना पड़ा और अब इस नौकरी को पाकर उसे लगा कि तूफान से बचकर उसकी जीवन–नौका एक शान्त बन्दरगाह पर आ पहुंची है।'' अपने मुहल्ले के लड़के नारायण के प्रति आकर्षित होने पर भी उसके पिता उसका विवाह नहीं होने देते। माँ सफाई देती है– ''जिसका जहाँ जिससे संजोग जुड़ा होता है, वही होता है। हमारे करने–न–करने से क्या होता है।'' सुषमा जैसी बेबस लड़कियां बुरी तरह से आहत होकर अकेला जीवन बिताने पर मजबूर हो जाती हैं। सुषमा को अपने परिजन निर्दयी लगते हैं। वह अपना दुख अपनी सहेली मीनाक्षी से बांटती हैं।

इस उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य एक ऐसी स्त्री के प्रेम का वर्णन करना है जिसने स्वयं को कालेज की चारदीवारी में कैद किया हुआ है। जिसके सामने अपने पिता के परिवार को चलाने की जिम्मेदारी है। उसने अपनी सारी भावनाओं को मार दिया है। उसके जीवन में नील का आगमन एक सुखद अहसास है। लेखिका के शब्दों में – ''नील उसे प्रिय था, उसने यह बात स्वीकार कर ली थी। वह कहानियों की उन शापग्रस्त राजकुमारी की भांति थी जो नील के स्पर्श से जाग उठी थी। कभी–कभी नील के मुख पर भावों के उतार–चढ़ाव को देखकर उसे अपने पर आश्चर्य होता था। क्या किसी और को इतना सुख देने, किसी के मुख पर इतनी कोमलता लाने की क्षमता उसमें है?''

नील के प्रेम में सरोबार सुषमा एक पल के लिए भी खोना नहीं चाहती। वह नील से कहती है–''नील, तुम्हारे सामने मैं क्यों इतनी अवश हो जाती हूँ। मैं सब कुछ भूल जाती हूँ, वह सारी पीड़ा और सारी कचोट..........मेरा मन इन सबसे कहीं दूर, दूर जाने को करता है। थक गई हूँ मैं।'' नील सुषमा को प्यार करता है और उसे पत्नी के रूप में देखता चाहता है। सुषमा के मना करने पर वह बुरी तरह से टूट जाता है। वह सुषमा के परिवार की जिम्मेदारी लेकर उसे चिन्तामुक्त करना चाहता है पर सुषमा नील के भविष्य पर इसकी छाया नहीं पड़ने देना चाहती। लेखिका के शब्दों में–''नील, जिसके आगे अभी पूरा जीवन न जाने क्या–क्या लिए बिखरा पड़ा था; जिसका पूरा परिवार उसके लिए बहुत सुन्दर और उच्चकुलीन पत्नी जुटाने में व्यस्त था और वह हमेशा हंसकर अपनी शादी की बात टाल देता था; नील, जिसमें तरुणाई की चंचलता के साथ बड़ी समझदारी थी; नील, जिसने उस समझदारी के साथ कुछ स्वप्न भी संजो रखे थे और उसे पूरा विश्वास था कि वे स्वप्न पूरे भी होंगे।''

सुषमा और नील के असफल प्रेम की कहानी का वर्णन इस उपन्यास का मूल विषय है। सुषमा अपने हालातों से मजबूर है। नील का प्यार पाकर वह फूल की तरह खिल गयी थी परन्तु कालेज में होनी वाली चर्चा और प्रिंसीपल द्वारा इस्तीफा मांगने पर वह नील से दूर होने लगी। दुख के एकान्त क्षणों में सुषमा को लगता–''सब कुछ कहाँ डूब गया था–जीवन

के प्रति उत्साह, परिवार के प्रति मोह, फूलों के रंग। सुषमा अकेली थी, अपने दुख, अपमान और लज्जा की गहराइयों में भटकती, आर्त चीत्कार करती हुई। कभी–कभी नील का चेहरा चेतना में उभर आता और सुषमा की सांसें सीने में चुभने लगती।'' असफल प्रेम के शिकार सुषमा और नील, दोनों का जीवन व्यर्थ हो जाता है। एक पढ़ी लिखी अच्छी पदवी पर बैठी स्त्री एक होनहार योग्य पुरुष को केवल इसलिए नहीं पा सकती कि उसके पिता के परिवार को उसकी आय की जरूरत है। इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है? सुषमा द्वारा विवाह के लिए अपनी असमर्थता प्रकट करने पर नील भी टूट जाता है। लेखिका ने नील की निराशा को व्यक्त करते हुए लिखा है–''जब ये यह बवंडर उठ खड़ा हुआ था, तब से नील में एक बहुत बड़ा परिवर्तन देखा। जैसे वह सुषमा से कितना बड़ा हो गया था और सुषमा ने हार–थककर अपना बोझ उस पर डाल दिया था। नील उससे बात करता तो ऐसे स्वर में कि जैसे सुषमा एक आहत शिशु है। उसने अपनी इच्छाओं को सुषमा की मनः स्थिति के अनुसार ढाल लिया था। कभी–कभी पूरी शाम वे दोनों चुपचाप बैठे काट देते। सुषमा रह–रहकर सिसक उठती और वह मौन बैठा उसके बालों को सहलाता रहता। कभी सुषमा मुस्कुराती हुई उसकी ओर बढ़ती तो एक क्षण में नील के स्वभाव की सारी चंचलता लौट आती और कभी स्वयं समर्पित सुषमा की भावनाओं को प्रतिदान देते हुए उसकी आंखें ऐसी कोमल हो उठतीं कि सुषमा से वह दृष्टि सही न जाती।'' सुषमा नील के उत्कट प्रेम को समझती है। सुषमा के यह कहने पर कि उसे कम उम्र की सुन्दर पत्नी मिल सकती है, नील उत्तर देता है–'तुमने मुझे यही परखा है! सुषमा की नियति है–'ये कालेज, खम्भे, मेरी डेस्टिनी हैं।' सुषमा से इंकार पाकर नील भी विवाह न करने की कसम खाता है। वह सुषमा के बिना नहीं रह सकता।

इस उपन्यास में लेखिका ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि कभी–कभी स्त्री की योग्यता उसके लिए अभिशाप बन जाती है। सुषमा इसी प्रकार की अभिशापित स्त्री है। सब तरह से योग्य और सुन्दर होते हुए भी वह सुखी जीवन नहीं पा सकी। नील जैसे व्यक्ति का प्रेम पाकर भी वह अधूरी रह गयी। लेखिका को सुषमा से बहुत सहानुभूति है। उसने मीनाक्षी के माध्यम से इस सहानुभूति को बार–बार प्रकट किया है। मीनाक्षी सुषमा की वेदना को समझती है और सुषमा केवल उसी से अपने दिल की बात कहती है। लेखिका के शब्दों में – ''दोनों की दृष्टि मिली और बंधकर रह गई। सुषमा की आंखों में चमक थी, सायास रोके गए आंसूओं की, और मीनाक्षी की आंखों में करुणा थी। केवल वह समझती थी कि सुषमा कितना झेल रही है। दुनिया के आगे उसने बड़ा ही संयत रूप प्रस्तुत किया था। जैसे नील मात्र परिचित था और उसके चले जाने पर कुछ विशेष अन्तर नहीं पड़ता। पर मीनाक्षी ने उन रंगीन वस्त्रों, केश–विन्यास और प्रसाधनों के पीछे की यथार्थता देखी थी। एकान्त में

बैठी सुषमा के मुख पर अव्यक्त वेदना, रात में टूटते तारों की तरह आंसू और पकड़े जाने पर उसकी झेंपी–सी हंसी भी देखी थी।''

एक ओर हम स्त्री की शिक्षा एवं स्वतन्त्रता पर बहस करते हैं और उसके पक्ष में बोलते हैं दूसरी तरफ हैं–पढ़ी–लिखी औरतों का यह अभिशापित जीवन। इस उपन्यास में ऐसी स्त्रियों की सामाजिक–आर्थिक एवं निजी विवशताओं से जन्मी मानसिक यन्त्रणाओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। सुषमा इन्हीं मजबूरियों के कारण कालेज की चारदीवारी में कैद है। उसे अब और घुटन का तीखा एहसास है, उससे मुक्त होना चाहती हे। नील उसे इस दारुण स्थिति से उबारना चाहता है पर सुषमा उसे स्वीकार नहीं कर पाती। उस चारदीवारी में लाल दीवारों और पचपन खंभों के साथ जीना उसकी नियति हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास उषा प्रियम्वदा की एक सुन्दर रचना है जिसमें नारी जीवन की विवशताएं और उनसे उत्पन्न निराशा अपने यथार्थ रूप में चित्रित हुई हैं। यह लेखिका की उत्तम रचना है जिसमें नारी वेदना को स्वर दिया गया है।

पाठ संख्या–2.5

लेखिका-डॉ. सुरिन्द्रपाल कौर

तौलिये

रूपरेखा

1. लेखक परिचय (उपेन्द्रनाथ 'अश्क')
2. एकांकी का सार
3. उद्देश्य
4. चरित्र–चित्रण

1. लेखक परिचय –

श्री 'अश्क' का जन्म जालन्धर (पंजाब) में हुआ था। आपने बी.ए. एल.एल.बी. तक शिक्षा पाई। पहले आप उर्दू में लिखते रहे, बाद में हिन्दी में लिखने लगे और शीघ्र ही हिन्दी लेखकों में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। आप बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार थे। आपने उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, कविता सभी कुछ लिखा है, और सफलतापूर्वक लिखा है। रंगमंच से आपका निकट सम्बन्ध रहा और यही कारण है कि आपके नाटक सफलता के साथ अभिनीत हो चुके हैं। श्री जगदीशचन्द्र माथुर के शब्दों में : 'श्री अश्क को नाटककार का लिबास पहनने की आवश्यकता नहीं है। उनकी स्वाभाविक सूझ और अभिव्यक्ति नाटकीयता से पगी है।''

विभाजन के बाद आप इलाहाबाद आ गये और वहीं पुस्तक–प्रकाशन और लेखन का कार्य करते रहे।

नाटककार 'अश्क' ने प्रस्तुत एकांकी 'तौलिये' में आधुनिक शिष्टाचार की कृत्रिमता को दर्शाया है, जिसके चलते मधु खुलकर हंस नहीं सकती, बोल नहीं सकती, यहां तक कि अपने पति वसन्त के जीवन में भी उसने अपने इस व्यवहार से घुटन पैदा कर दी है। इस एकांकी से यह स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण हमारे लिए उपयुक्त नहीं है। यह हमारी नैसर्गिक प्रवृतियों पर आघात कर जीवन को विषम बनाए दे रहा है।

नाट्य कृतियाँ : तूफान से पहले, आदि मार्ग, कैदी और उड़ान, छठा बेटा, चरवाहे, देवताओं की छाया में, स्वर्ग की झलक, जय–पराजय आदि।

2. एकांकी का सार –

'तौलिये' एकांकी में अश्क जी ने आधुनिक युग में मध्यवर्गीय परिवारों में बढ़ रही दिखावे, झूठे–खोखले आदर्शों और शिष्टाचार पर तीखा व्यंग्य किया है।

एकांकी का नायक वसंत नई दिल्ली जैसे महानगर में एक फर्म–मैनेजर के पद पर है। कंपनी की ही तरफ से उसे एक फोन मिला है। उसकी मासिक आमदनी अढ़ाई सौ रूपये है, जो महानगरीय जीवन के लिए बहुत कम है। नाटक का पर्दा उठने पर बसन्त अपने ड्रेसिंग टेबल के सामने बैठा शेव कर रहा होता है और शेव करने के बाद वहीं पड़े एक तौलिये के साथ अपना मुँह साफ कर लेता है, जिससे उसकी पत्नी मधु उसे मोहन का तौलिया इस्तेमाल करने पर डाँट देती है। वसंत कहता है

कि सारे तौलिए एक से ही हैं, इस कारण उससे गल्ती हो गई और बात टालने का प्रयास करता है। दोनों में कहासुनी हो जाती है। वह मधु से कहता है कि सफाई तो उसे भी पसंद है किंतु वह उसकी तरह अरिस्टौक्रेटिक वातावरण में नहीं पला। तब मधु कहती है कि वह कब कहती है कि दस तौलिए हों, वह तो कहती है कि प्रत्येक व्यक्ति को सफाई रखनी चाहिए क्योंकि कुत्ता भी जब बैठता है तो पूंछ मारकर बैठता है। वसंत कहता है कि हम छहों भाई एक ही तौलिए का प्रयोग किया करते थे। तब भी हममें से किसी को कोई बिमारी नहीं लगी और तुम कहती हो कि दूसरे की चीज़ इस्तेमाल करने से बीमारी लग जाती है। बीमारी तो शरीर की अंदरूनी कमजोरी के कारण लगती है। फिर बसंत मधु को एक कहानी सुनाता है जिसमें चूहा सैदन शाह गाँव की उदाहरण देता है, जिस के लोग एक तालाब का गंदा और कीचड़ वाला पानी पीते थे। अमरीका के एक डॉक्टर ने जब उनमें से एक व्यक्ति के रक्त का परीक्षण किया तो पता चला कि उस व्यक्ति में बीमारी का मुकाबला करने वाले कीटाणु बहुत ज्यादा थे।

मधु बसंत की इन बातों से असहमत होती है। पति–पत्नी में विवाद बढ़ता जाता है। मधु कहता है कि वह उन गरीबों में घण्टों बिता सकता है, जिन्हें वह अपने फर्श पर पैर तक नहीं रखने देती। तब मधु कहती है कि गरीबी अपनी जगह है किन्तु गंदगी और बात है। फिर वह कहता है कि उसका स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि टोकाटाकी उसकी आदत में शामिल हो गई है, तभी तो उसकी भतीजियाँ मधु के डर से ही उसके घर नहीं आतीं क्योंकि मधु को ऊँची आवाज़ में हंसना भी पसंद नहीं है। फिर वह कहता है कि जो व्यक्ति घुट–घुट कर बिना हँसे–हँसाए अपना जीवन जीता है, उसके जीवन में खुशी के पल कभी नहीं आते। वह तो खुशी का एक पल जीने को भी तरस जाता है। शादी से पहले वसंत अपने मित्रों के साथ एक बेड पर बैठकर चाय पीता था, सभी मित्र खूब हँसी–मज़ाक करते थे, खूब बतियाते थे, किंतु अब सब बदल गया है। अब तो मित्र भी घर आते हैं, तो दूर कुर्सी पर बैठ कर बातें करते हैं और चाय पीते हैं। अब पहले वाली बात नहीं रही। अब शिष्टाचार के बंधनों में सभी बंधते जा रहे हैं। पति की बातें सुनकर मधु कहती है कि उसे तो केवल सफाई पसंद है, जब दूसरा ऐसा न करे तो इसमें उसकी क्या गल्ती है। वह कहती है कि वह तो पैर धोकर ही रजाई में बैठती है। वह गंदे लोगों से घृणा करती है। वह कहती है कि एक बार वसंत की भतीजी निमो बिना पैर धोए ही रजाई में बैठ गई थी। तब वसंत कहता है कि ''वह उसे पशु समझती है। उसकी हर बात से घृणा करती है।'' मधु गुस्से में आकर कहती है – ''आपको मेरी व्यवस्था, मेरी सफाई बुरी लगती है। मैं आपकी दुनिया में न रहूँगी। मैं आज ही चली जाऊँगी।'' वह अपनी नौकरानी को उसका सामान बांधने को कहती है किन्तु तभी वसंत के दफतर से फोन आता है कि उसे बनारस जाना होगा। तब वसंत मधु से कहता कि पहले उसका सामान पैक किया जाए, उसे काम से बाहर जाना होगा। यहीं पर्दा गिर जाता है। पर्दा उठने के बाद रंगमंच पर कुछ बदलाव का अनुभव होता है। ड्राईग रूम में एक बैड बिछा है, जिसमें मधु रजाई लेकर बैठी है। जनवरी का महीना चल रहा है यानि वसंत को बनारस गए हुए दो महीने हो चुके हैं। मधु उदास हो जाती है। तभी मधु की दो सहेलियाँ उसके पास आती हैं, जिन्हें वह अपने बैड पर ही बैठने को कहती है। सहेलियाँ बड़ी हैरान होतीं है कि मधु यह बात कैसे कह सकती है। फिर वह अपनी नौकरानी को चाय लाने के लिए कहती है और तीनों सहेलियाँ रजाई में बैठकर ही चाय पीती हैं। फिर उन्हें वह हाथ न धोकर तौलिये से ही हाथ साफ करने को कहती है। फिर किसी बात को लेकर मधु खूब खिलखिला कर हंसती है। इस प्रकार वे खूब खुश होती है। तब वे दोनों चली जाती हैं। दोनों के जाने के बार मधु अपनी नौकरानी से पूछती है कि क्या वह सच में ही बदल गई है। तफल्लुक, बनावट, नफरत इन तीनों का वह अपने दिल से निकाल देना चाहती है। वह स्वयं से कहती है कि

शायद बचपन के इन संस्कारों को वह स्वयं से निकाल नहीं पाती, इसी कारण वसंत उससे अब तक नाराज़ है, वे उसे पत्र भी कम ही लिखते हैं किन्तु अब वह अपने को पूरी तरह से बदल देगी।

इतने में वसंत बनारस से लौट आता है। ड्राईग रूम में बिछे बैड को देखकर, वहीं पड़े कप और ट्रे को देखकर वह हैरान हो जाता है कि यह काया कलप कैसे हो गया। मधु उसे बताती है कि वह अब बदल चुकी है। उसने अपनी सहेलियों के साथ एक ही बैड पर बैठकर चाय पी है, बातें की हैं। अब तो वह उससे नाराज़ तो नही? तब वसंत कहता है कि वह उससे नाराज नहीं है। वह तो दफतर के काम में ही इतना व्यस्त था कि उसके पास मधु को पत्र लिखने का समय नहीं होता था। इतना सुनने की देर थी कि जैसे मधु फिर से पुरानी मधु बन गई। वह वसंत को नहा धोकर कपड़े बदलने को कहती है और सुरो के तौलिये से हाथ साफ करते देखकर डाँट देती है और इसी नोक–झोंक में एकांकी समाप्त हो जाती है।

3. उद्देश्य –

प्रस्तुत एकांकी में लेखक ने मध्यवर्गीय परिवारों में बढ़ती दिखावे की प्रवृति को रेखांकित किया है कि किस पर मध्यवर्ग सीमित आय होने पर उच्च वर्ग की नकल करता है। वैसा ही दिखने का प्रयास करता है। घर में सोफा सैट, डाईनिंग टेबल, ड्रेसिंग टेबल, बढ़िया टी–सैट होना भी आवश्यक है। व्यवहार भी नकल से भरपूर यानि बनावटी। एकांकी की पात्र मधु मध्यवर्ग से संबंध रखती है। उसके इसी व्यवहार के कारण उसका पति बसंत उससे अक्सर गुस्सा रहता है। वह उसे अपना व्यवहार बदलने को कहता है किन्तु मधु कहती है कि उसे शुरू में ही सफाई पसंद है, चीजें अपनी जगह से उठाकर वहीं रखना, ऊँची आवाज़ में न हँसना, किसी अन्य का तौलिया न इस्तेमाल करना पैर धोकर रजाई में बैठना इत्यादि उसकी आदतों में शामिल है। वह चाहती है कि उसके घर का प्रत्येक सदस्य वैसा ही व्यवहार करे। यहां तक कि मेहमान और पति के मित्र भी इन बातों का पूरा ध्यान रखें। वह कहती है कि जिसे उठने–बैठने, खाने–पीने का सलीका नहीं वह मनुष्य थोड़ा न है, वह तो पशु है। मधु की ऐसी बातों से वसंत खीज जाता है। वह कहता है कि मधु उससे नफरत करती है। किन्तु मधु का यह व्यवहार तब बदलती है, जब वसंत दफतर के काम से बनारस चला जाता है। पति के अनुपस्थिति में उसे लगता है कि शायद वसंत उससे नाराज़ है इसीलिए वह उसे पत्र नहीं लिखता। तब वह अपना व्यवहार वैसा बनाती है, जैसा उसका पति चाहता है किन्तु पति के आने पर वह फिर से ही वैसे ही बन जाती है, जैसे वह पहले होती है।

इस एकांकी के माध्यम से लेखक यही दर्शाना चाहता है कि मध्यवर्ग में जो दिखावे की प्रवृति मानी जाती है, वह यथार्थ में भी उसमें देखने को मिल जाती है। मध्यवर्गीय व्यक्ति की आय भी इतनी नहीं है कि वह उच्चवर्ग जैसा सब कुछ प्राप्त कर ले, किन्तु दिखावे की मानसिकता के कारण ही वह स्वयं को मुसीबत में डाले रखता है। पारिवारिक तनाव और कलेश बढ़ जाता है। खर्चे बढ़ जाते हैं। कारण केवल एक है, झूठा दिखावा, कृत्रिम (बनावटी) व्यवहार, शिष्टाचार अश्क जी की यह एकांकी आधुनिक युग में तो और सार्थक और सफल बन पड़ी है।

4. चरित्र–चित्रण (वसन्त) –

वसन्त दिल्ली महानगर में एक फर्म में मैनेजर है। उसकी मासिक आमदनी अढ़ाई सौ रूपये है। वह मध्यवर्गीय परिवार से है। उसकी पत्नी घर को उच्चवर्ग की भांति सजा–संवारकर रखती है। वह चाहती है कि घर का सारा सिस्टम यानि खाना–पीना, रहन–सहन, उठना–बैठना उसके हिसाब से हो, जिससे कई बार वसन्त और मधु में तू–तू मैं–मैं हो जाती है। घर में तनाव भरा माहौल बन

जाता है, किन्तु वसन्त का प्रयास यही रहता है कि वह हंसी–मज़ाक में बात को संभाल ले। एकांकी के प्रारम्भ में भी मोहन के तौलिये से मुंह साफ करने पर जब मधु उसे डाँटती है, तो वह हंसी में बात टालता कहता है कि उसे तो सब तौलिये एक–से ही लगते हैं। वह मधु से बहुत प्रेम करता है। वह उसे गुस्से होने से रोकता है। ''इसी तरह विष घोल कर तुमने अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश कर लिया है।'' वसन्त को हँसी–मज़ाक बहुत पसन्द है। अपने भतीजियों के ऊँचा हँसने पर भी वह मधु को कहता है कि वे तभी यहाँ नहीं आती क्योंकि मधु को ऊँचा हँसना–बोलना पसंद नहीं है। एकांकी के अन्त में जब वह बनारस से लौट आता है, तो घर में हुए परिवर्तन को देखकर अत्यधिक हैरान हो जाता है कि मधु के स्वभाव में यह यकायक बदलाव कैसे हुआ। तब उसे पता चला कि मधु को डर था कि बनारस जाकर वह उसे पत्र नहीं लिख रहा शायद वह उससे गुस्सा है तब वह हंस कर कहता है–''तो तुम इस का अर्थ यह समझती हो कि मैं तुमसे नाराज़ हूँ? पगली तुम से भी कोई नाराज़ हो सकता है।'' पति के बात सुनकर मधु निश्चित हो जाती है और उससे कहती है–''अच्छा आप जाकर मुँह हाथ धो लीजिए। मैं चाय तैयार करती हूँ।''

वसन्त बहुत स्पष्टवादी है। उसे यह बात स्वीकारने में तनिक भी झिझक नहीं कि वे छहों भाई एक ही तौलिये का प्रयोग करते रहे हैं। उन्हें तो कभी भी। किसी प्रकार की बीमारी नहीं हुई। क्योंकि अंदर से शरीर मज़बूत होने से कोई बीमारी आपको छू तक नहीं सकती। वह अपने मित्रों के साथ खूब मस्ती करता था। सभी मित्र एक ही लिहाफ में बैठ कर खूब हंसते और चाय पीते।

उसे दिखावे और बनावटी व्यवहार से चिढ़ है। मधु की सफाई की सनक से वह परेशान भी हो जाता है वह कहता है –''मुझे गन्दगी से घृणा नहीं, किन्तु मैं गन्दगी पसन्द नहीं करता। यदि हमें जीवन का सामना करना है, तो रोज़ गन्दगी से दो–चार होना पड़ेगा फिर इससे घृणा कैसी?.......... तुम्हारे ऐसे वातावरण में पले हुए सब लोगों की नफासत में नफरत नफरत की।............स्वच्छता बुरी नहीं, पर तुम तो हर चीज़ को सनक की हद तक पहुँचा देती हो और सनक से मुझे चिढ़ है।''

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वसन्त को खोखली बातों, झूठे दिखावे और कृत्रिम शिष्टाचार से चिढ़ है, वह जैये अन्दर से है, वैसा ही बाहर से भी है। मध्यवर्गीय परिवार से संबंध रखते हुए वह कभी चादर से बाहर पैर पसारने का प्रयास नहीं करता और जीवन में खुश और संतुष्ट रहता है।

औरंगजेब की आखिरी रात (डॉ. रामकुमार वर्मा)

रूपरेखा

1. लेखक परिचय
2. एकांकी का सार
3. उद्देश्य
4. चरित्र–चित्रण
5. सप्रसंग व्याख्या

1. लेखक परिचय –

'डॉ. रामकुमार वर्मा' का जन्म 15 सितम्बर 1905 को सागर, मध्य प्रदेश में हुआ था। सन् 1940 में इन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय से पी.एच.डी की उपाधि प्राप्त की। हिन्दी साहित्य के आलोनात्मक इतिहास पर इन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। डॉ. रामकुमार वर्मा के हृदय से नाटकों के प्रति बचपन से ही आकर्षण पैदा हो गया था। आधुनिक

एकांकी नाटक के विकास में आपका योगदान अकथनीय है। 'सप्तकिरण' एकांकी संग्रह पर इन्हें अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन पुरस्कार मिला। त्याग, दया, क्षमा आदि का चित्रण इनकी ऐतिहासिक एवं पौराणिक एकांकियों में मिलता है। पात्र, वातावरण और प्रसंग के अनुसार इनकी एकांकियों की भाषा शैली बदलती रहती है। डॉ. रामकुमार वर्मा की भाषा में काव्यत्मकता, कलात्मक और साहित्यिक सौन्दर्य है। रामकुमार वर्मा जी पात्रों के अनुकूल भावनाओं और विचारों को सच्चे रूप में वहन करने वाली भाषा लिखते हैं। 'औरंगजेब की आखिरी रात' एकांकी में शाही उर्दू भाषा का विशुद्ध रूप मिलता है।

कृतियां : ध्रुवतारीका, पृथ्विराज की आंखें, सप्तकिरण, रेशमी टाई, शिवाजी, आठ एकांकी नाटक, कौमुदी महोत्सव, सारंगस्वर, जुही के फूल, चार ऐतिहासिक एकांकी नाटक। जौहर, अंजली, रूपराशि, चित्ररेखा।

2. एकांकी का सार :

'औरंगजेब की आखिरी रात' डॉ. रामकुमार वर्मा जी द्वारा लिखित एक प्रसिद्ध एकांकी है, यह उनके 'सप्तकिरण' एकांकी संग्रह में संकलित है। इस एकांकी में वर्मा जी ने मुगल बादशाह औरंगजेब की उस मानसिक स्थिति का वर्णन किया है जब वह अर्ध चेतन अवस्था में अपने अहमदानगर वाले किले में पड़ा है। उसके पास उसकी बेटी जीनत बैठी है। अपने जीवन में किए गए दुष्ट कार्यों पर वह चिंतन कर के पश्चाताप कर रहा है। अपने जीवन में प्रजा पर उसने जो अत्याचार किया, जो जजिया कर हिन्दुओं पर लगाया, कैसे अपने पिता शाहजहाँ को कैद करके और अपने भाइयों को कत्ल करके शासन प्राप्त किया इसका सजीव चित्रण वर्मा जी ने इस एकांकी में किया है। मराठों की अपराजेय शक्ति, राजदरबारियों का आपसी संघर्ष और अपनी अस्वस्थता औरंगजेब को उसके आखिरी समय में बेचैन कर रही है।

औरंगजेब की खाँसी एक पल के लिए भी नहीं रूकती, और वह अपनी बेटी जीनत से कहता है कि यह खांसी की आवाज नहीं है, मौत की आवाज है, सल्तनत के उखड़ने की आवाज है, उसे कोई नहीं रोक सकता। जीनत उसे हौंसला देती हुई उसके दर्द को कम करने का प्रयत्न करती हैं, पर वह नाकामयाब रहती है। उसे अपने बचपन के दिन याद आते हैं। कैसे उसने अपने भाईयों पर अत्याचार किए और अपने भाई दारा का बचपन का शोर याद करके ही वह कान बन्द कर लेता है। फिर उसे धड़ से अलग किया गया, दारा का लहुलुहान मस्तक दिखाई देता है।

वह हकीम को ऐसी दवा देने को कहता है जिससे वह इन दृश्यों से छुटकारा पा सके। पर जिन्दगी के इन आखिरी क्षणों में भी उसका शक्की स्वभाव नहीं जाता। वह ज़हर मिलाने के शक्क के कारण हकीम की दवा नहीं पीता। जीनत को वह दवा फेंकने को कहता है। आज उसे पश्चाताप हो रहा है कि जीवन भर अविश्वास के कारण उसने किसी को भी अपना नहीं बनाया। वह कहता है कि जब मैं जन्मा था तब हजारों लोग मेरे इर्दगिर्द थे, पर आज मेरे आखिरी क्षणों में कोई भी मेरे पास नहीं है। मेरा एक भी बेटा आज मेरे पास नहीं है।

अन्त में वह अपनी बेटी जीनत से कहता है कि उसकी अंतिम इच्छा है कि उसकी देह को बिना कफन या ताबूत के ही जमीन में दफन कर दिया जाये, क्योंकि जमीन पर बनी मिट्टी की कब्र पर जब हरियाली छा जायेगी तो उसे खुशी प्राप्त होगी। अपने अपराधों की क्षमा चाहता हुआ आलमगीर दारा, शुजा, मुराद के नाम लेते हुए अल्ला.......हो.........अक..........शब्द दुहराते हुए मृत्यु को प्राप्त होता है।

3. उद्देश्य :

लेखक ने इस एकांकी में औरंगजेब के जीवन के माध्यम से मानव जीवन के दुर्बल पक्ष का उद्‌घाटन किया है, कि कैसे मानव जीवन की सबसे बड़ी दुर्बलता उसकी महत्वकांक्षा व लालच है। जिसके वशीभूत होकर औरंगजेब कितना निर्दयी हो जाता है। औरंगजेब के मन के अंतर्द्वंद्व के माध्यम से लेखक ने यह प्रस्तुत किया है कि जीवन में किये जाने वाले कुकर्म और सत्कर्म का प्रभाव कभी न कभी मनुष्य पर अवश्य पड़ता है। औरंगजेब की तरह प्रत्येक मनुष्य को अपने दुष्ट कार्यों पर कभी न कभी पश्चाताप करना पड़ता है। जीवन के ऐसे ही चिर सत्यों से पाठक को परिचत कराना लेखक की इस एकांकी का उद्देश्य है। मृत्यु के समीप पहुंच कर ही व्यक्ति तटस्थ होकर अपने कार्यों के उचित व अनुचित होने पर विचार करता है।

4. चरित्र–चित्रण :

पात्र और चरित्र–चित्रण एकांकी के प्रमुख तत्वों में से एक आवश्यक तत्व है। इस एकांकी में कुल 5 पात्र हैं–मुगल सम्राट आलमगीर औरंगजेब, जीनत उसकी पुत्री, सिपाही करीम, हकीम, कातिब। आलमगीर एकांकी का प्रमुख पात्र है। औरंगजेब का सम्पूर्ण चरित्रांकन ऐतिहासिकता के वास्तविक आधार पर किया गया है। औरंगजेब लालची और शक्की स्वभाव का है। जिसके कारण वह अपने जीवन में अपनी प्रजा, अपने पिता और भाइयों पर बहुत अत्याचार करता है। लेकिन मृत्यु के समीप पहुंचकर उसे अपने इन कुकर्मों पर पश्चाताप होता है। जीनत औरंगजेब की पुत्री उसकी सेवा के लिए उसके पास बैठी है। उसकी आयु 40 वर्ष है। औरंगजेब की हालत देखकर वह उसे हौंसला देते हुए कहती है कि आज भी हिन्दुस्तान और दक्षिण आपके इशारे पर बनते और बिगड़ते हैं। वह भी अपने पिता की तरह शक्की स्वभाव की है, हकीम द्वारा दी दवाई को औरंगजेब को देने से पहले खुद चख कर देखती है।

5. सप्रसंग व्याख्या :

''हजारों सतनामियों को कतल किया........दारा, शुजा, मुराद के तख्ते ताउस का हक नहीं दिया और बाप को सात बरस तक लम्बे सात बरस तक।''

प्रसंग –

प्रस्तुत पंक्तियां 'डॉ. रामकुमार वर्मा' द्वारा लिखित एकांकी 'औरंगजेब की आखिरी रात' में से ली गई है। इनमें मुगल बादशाह औरंगजेब की उस मानसिक स्थिति का वर्णन किया है ज बवह अर्ध चेतन अवस्था में अपने अहमदानगर वाले किले में पड़ा है। उसके पास उसकी बेटी जीनत बैठी है। अपने जीवन में किए गए दुष्ट कार्यों पर वह चिंतन कर के पश्चाताप कर रहा है। ये पंक्तियां वह जीनत को उस समय कहता है जब वह उसे कहती है कि आप ने कोई गुनाह नहीं किया।

व्याख्या –

औरंगजेब कहता है कि मैंने अपने जीवन में कितने ही सिक्खों को कत्ल कर दिया। अपने भाईयों दारा, शुजा, मुराद को धोखा दिया उनको उनका हिस्सा नहीं दिया, उनका हक छीन लिया। तख्त प्राप्त करने के लिए अपने बाप को सात साल तक जेल में नजरबंद रखा। यह सब कुकर्म मैंने इस्लाम के नाम पर किए, अपनी सल्तनत को बचाने के लिए किए।

पाठ संख्या : 2.6 लेखिका : डॉ0 सुरिन्द्रपाल कौर

जयशंकर प्रसाद : व्यक्तित्व एवं कृतित्व और 'ग्राम' कहानी का परिचय

रूपरेखा :

2.4.0 उद्देश्य
2.4.1 भूमिका
2.4.2 जयशंकर प्रसाद का साहित्यिक परिचय
2.4.3 कहानी के तत्त्व
2.4.4 'ग्राम' कहानी का परिचय
2.4.5 लघु प्रश्नोत्तर
2.4.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.4.0 उद्देश्य :

आप इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् प्रसिद्ध लेखक जयशंकर प्रसाद के हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व को जानने के साथ–साथ, उनकी साहित्यिक विशेषताओं से परिचित हो पाएंगे। कहानी के विभिन्न तत्त्वों पर भी विचार किया जाएगा।

2.4.1 भूमिका :

जयशंकर प्रसाद हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि, नाटककार आदि प्रमुख आधार स्तम्भों के रूप में प्रसिद्ध हैं। आप छायावादी काव्य के प्रमुख आधार स्तम्भों में से एक हैं। एक कथाकार के रूप में भी उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। आपकी सभी रचनाएं हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधियां मानी जाती हैं। प्रसाद हिन्दी साहित्य जगत के महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। इन्होंने कवि, नाटककार, उपन्यासकार एवं कहानीकार के रूप में साहित्य की महान सेवा की और एक नवीन युग का प्रवर्त्तन करके अपनी प्रतिभा का उज्जवल प्रकाश फैलाया।

2.4.2 जयशंकर प्रसाद का साहित्यिक परिचय :

प्रसाद का जन्म बनारस में 'सुघनी साहु' वैश्य परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम बाबू देवी प्रसाद और माता का नाम मुन्नी देवी था। माता–पिता का देहान्त होने पर प्रसाद को बड़ी छोटी आयु में पढ़ाई छोड़कर पिता का व्यवसाय संभालना पड़ा। पढ़ने में रुचि होने के कारण इन्होंने घर पर ही हिन्दी, उर्दू, पारसी, अंग्रेजी, शैव दर्शन तथा बौद्ध दर्शन का गहन अध्ययन किया। प्रसाद व्यवहार कुशल उदार, कर्मठ एवं भावुक व्यक्तित्व वाले थे। भारतीय गौरव का गुणगान एवं अतीत में आस्था रखने वाले प्रसाद को नवीनता के प्रति भी गहरी रुचि थी। भारतीय इतिहास दर्शन तथा धर्म में इन्होंने गहन अध्ययन किया। बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्रसाद का कृतित्व भी बहुआयामी रहा। इनके साहित्य में जीवन की व्यापकता एवं समग्रता के सहज दर्शन होते हैं। भारतीय इतिहास में से महान घटनाओं को लेकर इन्होंने देश के गौरवपूर्ण अतीत का समग्र चित्र प्रस्तुत किया जो भारतीय जनता के लिए प्रेरणा दायक सिद्ध हुए।

प्रसाद छायावादी साहित्यकार हैं। इन्होंने हिन्दी साहित्य में सुन्दर रचनाएं प्रदान की और कीर्तिमान स्थापित किया इन्हें इतिहास एवं दर्शन का विस्तृत ज्ञान प्राप्त था। इनकी रचनाओं में अधिकतर विषय भारत के प्राचीन इतिहास से लिये गए हैं, प्रसाद ने इन प्राचीन कथाओं में वर्तमान के प्रति सजगता दिखाई है और इनके माध

यम से अतीत भारतीय गौरव का गुणगान किया है। इनके साहित्य में जीवन का व्यापक चित्र विद्यमान है और मुख्य रूप से राष्ट्रप्रेम, विश्व मंगल, त्याग एवं बलिदान की भावना के साथ–साथ मानव–कल्याण में प्रसाद को विशेष रुचि दिखाई देती है। इनके साहित्य की प्रमुख विशेषता प्राचीन भारतीय संस्कृति का चित्रण है। इन्होंने अपने साहित्य में आदर्श के साथ–साथ यथार्थ का निरूपण भी किया।

भारतीय इतिहास की घटनाओं को आधार बना कर रचना करते समय कल्पना का सुन्दर प्रयोग किया। प्रसाद मूलतः एक कवि थे इसलिए उनकी कथात्मक रचनाओं में भी उनका कवि रूप उभरता है। उनके नाटकों में बहुत सुन्दर गीतों का प्रयोग हुआ है। प्रसाद के तीन प्रकार के गीत विशेष रूप से प्रसिद्ध है–करुणा और शान्त रस प्रधान गीत, प्रेमगीत और राष्ट्रप्रेम से परिपूर्ण गीत। प्रसाद की प्रसिद्ध काव्य रचनाएं हैं – उर्वशी, वनमिलन, प्रेमराज्य, अयोध्या का उद्धार, करुणालय, काननकुसुम, प्रेमपथिक, महाराणा का महत्त्व, आँसू, लहर और कामायनी। इनके प्रसिद्ध नाटक हैं–राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी। कथा साहित्य के अन्तर्गत प्रसाद ने केवल तीन उपन्यास लिखे – कंकाल, तितली और इरावती। इनके प्रमुख कहानी–संग्रह हैं–छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आंधी और इन्द्रजाल।

आधुनिक काल के कवियों में प्रसाद का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनकी गणना श्रेष्ठ कवियों में की जाती है। आप एक दार्शनिक कवि के रूप में विख्यात हैं। प्रेम एवं सौन्दर्य के उपासक प्रसाद एक युग प्रवर्त्तक कवि हैं जो छायावाद के प्रवर्त्तक भी माने जाते हैं। विद्वान प्रसाद को हिन्दी के कालिदास, शेक्सपीयर एवं रविन्द्रनाथ ठाकुर मानते हैं। वह एक गहन विचारक, तत्त्वदर्शी, चिन्तक एवं युग प्रवर्त्तक कलाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। सहनशीलता, धैर्य एवं आशामयी आस्था इनके व्यक्तित्व के गुण हैं जिसका प्रभाव इनकी रचनाओं पर भी मिलता है। इनके व्यक्तित्व में प्रकृति का भी योगदान रहा है। बहुत छोटी आयु में इन्होंने कुरुक्षेत्र, पुष्कर, ओंकेश्वर, उज्जैन, ब्रजमंडल तथा अयोध्या आदि प्रसिद्ध धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा की और इन स्थानों से संबंधित इतिहास का ज्ञान अर्जित किया। इन यात्राओं के दौरान पर्वतमालाओं एवं प्राकृतिक दृश्यों ने इन्हें विशेष रूप से आकर्षित किया। प्रसाद का समूचा साहित्य इनके इस अनुभव का प्रतिबिम्ब जान पड़ता है। एक कथाकार के रूप में प्रसाद का साहित्य अपनी संरचना–प्रतिभा के नये आयाम प्रस्तुत करता है। इनकी अधिकांश कहानियां इतिहासाभास लिए हुए हैं और उनमें रोमांटिक भाव–बोध के साथ–साथ यथार्थ तथा कल्पना का सुन्दर संयोग मिलता है।

प्रसाद हिन्दी साहित्य के महानतम कवि–विचारक एवं अनुपम रचनाकार के रूप में विख्यात हैं। इनकी रचनाएं अपने गुण धर्म के कारण भारतीय जनता के हृदय को प्रेरित एवं रोमांचित करने में सफल हैं। प्रसाद की रचनाएं मंगलदीप बन कर युगों–युगों तक भारतीय जनमानस को ज्योति प्रदान करती रहेगी।

2.4.3 कहानी के तत्त्व :

इस **एकांश में आपको जयशंकर प्रसाद** की कहानियों से परिचित करवाया जाएगा। प्रसाद की 'प्रतिनिधि कहानियाँ' नामक कहानी–संग्रह आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित किया गया है जिसकी प्रथम पाँच कहानियां अध्ययन हेतु निश्चित की गयी हैं। इन कहानियों के अध्ययन के पहले यह जानना जरूरी है कि कहानी के प्रमुख तत्व क्या होते हैं। कहानी का प्रमुख तत्व होता है उसकी कथावस्तु या कथानक। साहित्यिक भाषा में हम इसे मूल विषय, मुख्य विचार या व्यथा भी कह सकते हैं। लेखक अपने आसपास के परिवेश में से किसी विशेष घटना या व्यक्ति से प्रभावित होकर किसी घटना या विशेष व्यवहार के आधार पर विषय चुनता है। अपनी प्रतिभा तथा कौशल द्वारा कल्पना के योग द्वारा अपनी भाषा के माध्यम से उस विशेष अनुभव को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जिस समाज में हम रहते हैं उसी में लेखक भी विचरता है। लेखक में प्रतिभा

होती है कि वह किसी सामान्य या विशेष घटना या व्यवहार को अपने कौशल द्वारा पाठक के सामने लाने का कौशल रखता है। इसके लिए वह कल्पना के साथ–साथ सुन्दर भाषा शैली का प्रयोग भी करता है जिससे उसकी अनुभूतियां बड़ी सहजता से पाठतों तक पहुंच सकती है। कहानी का विषय इसलिये भी महत्त्वपूर्ण होता है कि उस विषय के माध्यम से लेखक जो कुछ अनुभव करता है उसे अभिव्यक्ति मिलती है। अपने अनुभवों को दूसरों तक पहुंचाने के लिए लेखक को विषय का सही चुनाव करना पड़ता है। विषय वस्तु या कथावस्तु कहानी का आधार तत्व है जो कहानी के अन्य तत्वों के सहयोग से उसे सुन्दर रचना का स्वरूप प्रदान करती है।

कहानी का **दूसरा तत्व** चरित्र–चित्रण होता है। कोई भी विषय तभी कहानी का स्वरूप प्राप्त करता है जब उसमें पात्र हों अर्थात् कथा पात्रों के माध्यम से ही आगे बढ़ती है। पात्रों के अभाव में कहानी का अस्तित्व असंभव है। साहित्य का सीधा सम्बन्ध समाज से है और समाज में रहने वाले स्त्री–पुरुष ही इसके मुख्य पात्र होते हैं। लेखक पात्रों को केवल प्रस्तुत ही नहीं करता बल्कि उनके चरित्र के चित्रण द्वारा अपनी बात भी करता है यदि वह किसी सामाजिक बुराई, कुप्रथा या रीतिरिवाज पर आधारित कहानी लिखता है तो उस विषय के बारे उसके अपने निजी विचारों को पात्रों के माध्यम से व्यक्त करता है। किसी भी रचना को पात्रों के बिना प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इससे स्पष्ट है कि पात्र तथा उनका चरित्र–चित्रण कहानी का महत्त्वपूर्ण अंग है जिसके माध्यम से लेखक अपने अनुभवों, विचारों तथा जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करता है।

कहानी का **तीसरा तत्व** संवाद या कथोपकथन है। जैसा कि हमने ऊपर कहा है कि लेखक अपने विचारों तथा संदेशों को पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करता है, तो यह भी अनिवार्य है कि पात्रों के संवाद ही माध्यम बन कर आते हैं। पात्र जो भी बातें आपस में करते हैं उन्हीं के आधार पर हम यह जान पाते हैं कि कहानी क्या है और उसमें किस विषय पर बात की जा रही है। वास्तव में कहानी का विषय पात्रों के संवादों के आधार पर ही विकसित होता है। कहानी की मूल समस्या उनके कथोपकथनों के आधार पर पाठकों के सामने स्पष्ट होती जाती है। लेखक जैसा चरित्र पात्रों का दिखाना चाहता है उसी के अनुरूप वह उनके संवाद लिखता है। मनुष्य द्वारा कही गयी बातें या किया गया व्यवहार ही उसके चरित्र का द्योतक होता है। इस दृष्टि से पात्रों के संवाद अति महत्त्वपूर्ण होते हैं। इनके द्वारा कहानी भी विकसित होती है और पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश डाला जा सकता है। संवादों के आधार पर लेखक की भाषा–शैली का ज्ञान भी सहज ही हो जाता है।

कहानी में जिस परिवेश या वातावरण का उल्लेख होता है, उसका भी अपना महत्त्व होता है। कहानी में प्रयुक्त भाषा एवं शब्दावली, रीतिरिवाज तथा सामाजिक वातावरण का वर्णन भी उसी के अनुसार होता है। यदि लेखक किसी ग्रामीण समस्या पर कहानी लिखता है तो उसे ग्रामीण वातावरण, वहां के रीतिरिवाज, रहन–सहन, सामाजिक–धार्मिक विश्वास तथा वहां की भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। वातावरण के अनुसार ही वह पात्रों का चयन भी करता है क्योंकि उसे उन्हीं पात्रों के माध्यम से उसे उस परिवेश की किसी समस्या को प्रकाशित करना पड़ता है। इसी तरह यदि वह किसी शहरी परिवेश पर कहानी लिखता है तो उसे वहां से ही पात्रों का चयन करना होगा और उसी के अनुरूप भाषा का भी प्रयोग करना पड़ेगा। कहानी का परिवेश या वातावरण उसे एक अलग स्वरूप प्रदान करने में सहायक होता है जहां से पाठक के सामने एक विशेष चित्र फलक प्रस्तुत हो जाता है और वह बड़ी सहजता से कहानी की वास्तविक समस्या को समझ लेता है।

कहानी में भाषा शैली का भी विशेष महत्त्व होता है। भाषा ही वह साधन है जिसके माध्यम से लेखक अपने

विचारों को प्रस्तुत कर सकता है। भाषा ही कहानी को आदि से अन्त तक विकसित करती है। इसके अभाव में किसी भी रचना की कल्पना नहीं की जा सकती। भाषा का चुनाव भी पात्रों के सामाजिक स्तर के अनुसार ही किया जाता है। यदि कहानी में शिक्षित तथा अशिक्षित पात्र दोनों ही हैं तो दोनों की भाषा अलग–अलग होगी। कहानी में जो समस्या चित्रित की गयी है उसकी श्रेणी या किस्म के आधार पर ही लेखक भाषा का चुनाव करेगा। यह भी सत्य है कि लेखकों की भाषा में भी अन्तर होता है। कुछ लेखक सरल हिन्दी का प्रयोग करते हैं और कुछ संस्कृतनिष्ठ कलिष्ट भाषा का। यह निश्चित है कि कहानी की विषय–वस्तु के अनुसार ही भाषा का प्रयोग किया जाता है। पात्रों के अनुसार लिखे गए संवाद कहानी में रुचि एवं मनोरंजन का भाव पैदा करने में सहायक सिद्ध होते हैं। कहानी के विषय के अनुसार भाषा में विशेष शब्दों का प्रयोग होना भी स्वाभाविक होता है। यदि लेखक किसी मनोवैज्ञानिक समस्या को लेकर कहानी लिखता है तो मनोविज्ञान के शब्दों का प्रयोग अवश्य करेगा। इसी तरह यदि कथावस्तु का सम्बन्ध किसी धार्मिक विषय से है तो धर्म सम्बन्धी शब्द निश्चित रूप से प्रयुक्त हो जाएंगे। शैली के संबंध में कहा जा सकता है कि विषय के अनुसार ही शैली बनती है। कभी–कभी लेखक किसी स्थिति का लम्बा–चौड़ा विवरण देते हुए वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करता है, कहीं संवादात्मक शैली के माध्यम से कहानी कहता है। कुछ कहानियां आत्मकथात्मक ''मैं'' शैली में लिखी जाती हैं या कुछ डायरी शैली में भी लिखी जाती है। यह लेखक का चुनाव है कि वह किस ढंग से कथा कहना चाहता है। एक तत्व की दृष्टि से इसका विशेष महत्व होता है क्योंकि कहानी में प्रयोग की गयी शैली से उसका स्वरूप निर्धारित होता है।

कहानी का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व होता है उसका उद्देश्य या संदेश। प्रत्येक कहानीकार किसी विशेष अनुभव से प्रभावित होकर कहानी की रचना करता है जिसके पीछे उसका कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। इससे वह पाठक के सामने कोई संदेश प्रस्तुत करता है जो उसका निजी दृष्टिकोण होता है। इसमें लेखक के अपने विश्वास, सिद्धान्त एवं अनुभव विशेष महत्त्वपूर्ण होते हैं। किसी लेखक का संदेश आदर्शवादी है, किसी का मार्क्सवादी और किसी का यथार्थवादी। किसी भी समस्या या स्थिति को अपने अनुभव के आधार पर परखना, अपने विचारों के आधार पर उसका विश्लेषण करना और अपने मत के अनुसार उस का उद्देश्य सिद्ध करना लेखक की प्रतिभा और कौशल पर आधारित होता है। कोई भी रचना उद्देश्य रहित नहीं होती और रचना का उद्देश्य या संदेश रचना का आधार तत्व होती है जिसके आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है। इसे ही रचना की मूल संवेदना कहा जाता है। लेखक जिस संदेश को पाठक तक पहुंचाना चाहता है यदि वह सफल हो जाए तो लेखक और पाठक अनुभव के एक ही स्तर पर आ जाते हैं और रचना की मूल संवेदना स्पष्ट हो जाती है। अगले पाठों में हम प्रसाद की कहानियों की तात्विक समीक्षा प्रस्तुत करेंगे।

2.4.4 'ग्राम' कहानी का परिचय :

1. कथावस्तु :

कहानी एक ग्रामीण क्षेत्र से शुरू होती है जहां एक छोटा सा रेलवे स्टेशन है। संध्या का समय है। श्रावण माह है और बादल छाये हुए हैं। स्टेशन पर घंटी बजती है जो गाड़ी के आने की सूचना दे रही है। छोटी–छोटी बूंदें गिर रही हैं और हवा चल रही है। स्टेशन पर एक–दो बत्तियां भी जल रही हैं। थोड़ी देर बाद वर्षा रुक गई और आकाश में चाँद दिखायी दे रहा है। रेलगाड़ी स्टेशन की ओर बढ़ती चली आ रही है। सिग्नलर ने फिर घंटा बताया और यात्री अपना सामान संभालते हुए गाड़ी की ओर बढ़ने लगते हैं। एक स्त्री एक पुरुष के साथ गाड़ी में बैठने जा रही है जिसे देख कर दो अन्य स्त्रियां दूर खड़ी रो रही है। लगता है उनकी सहेली उन्हें छोड़कर कहीं दूर जा रही है। उनकी ओर देखती हुई वह सेकंड कलास के डिब्बे में चढ़ने लगती है। इस डिब्बे में से एक बाबू साहब उतर रहे हैं जो उसे रोकते हैं कि वह इस सेकंड कलास

के डिब्बे में ना चढ़े।

यह बाबू साहब अंग्रेजी राज्य के अधीन काम करते हैं। बड़े रौब–दाब वाले, बढ़िया अंग्रेजी लिबास में हाथ में हंटर लिये हैं। स्टेशन मास्टर से हुई उनकी मुलाकात तथा बातचीत से पता लगता है कि वह कोई सरकारी अधिकारी हैं जो उस इलाके में कारिन्दों द्वारा मचायी गड़बड़ की जाँच–पड़ताल करने आए हैं। अंग्रेजी काठी से सजे घोड़े पर बैठकर वह कुसुमपुर नामक इलाके की ओर चल पड़ते हैं। शाम का समय है। ग्रामीण लोग कंधों पर हल रखे घरों की तरफ लौट रहे हैं। एक बड़े से वृक्ष पर झूला पड़ा है जिस पर चार स्त्रियां झूला झूल रही हैं और मधुर गीत गा रही है–''अबकी सावन सइयां घर रहु रे'' उनका यह सुन्दर मीठा गीत सुरीली कोयल के स्वर से भी मधुर है। मोहनलाल घोड़ा रोककर उनके पास पहुंचते हैं। उन्हें इस वेश में देख कर स्त्रियां घबरा जाती हैं। मोहन बाबू उनसे कुसुमपुर का रास्ता पूछते हैं। इनमें से एक प्रौढ़ा उसे एक तरफ इशारा करके कुसुमपुर का रास्ता बताती है। मोहन उस रास्ते पर चल पड़े। अचानक तेज वर्षा होने लगी और अंधकार भी बढ़ गया। उन्हें लगा कि वह रास्ता भूल गए हैं। भटकते हुए वह एक खेत के पास पहुँचे जिसमें एक मचान बना हुआ था जिस पर कुछ बच्चे बैठे शोर मचा रहे थे पास में एक कच्चा मकान भी था। मोहन बाबू चुपचाप खड़े इस दृश्य को देखते रहे। रात्रि बढ़ रही थी और उन्हें न कोई रास्ता दिखाई दे रहा था और न ही रहने का कोई ठिकाना था।

खेत के पास बने कच्चे मकान में से एक गरीब बालिका आंचल की आड़ में एक दीया ले कर बाहर आती दिखाई दी। पन्द्रह वर्ष की यह बालिका बहुत दीन और दरिद्र दिखाई पड़ती थी परन्तु दीये की रोशनी में उसका सौन्दर्य प्रकाशित हो रहा था। मोहनलाल ने उससे कुसुमपुर का रास्ता पूछा तो वह भयभीत हो उठी और बोली कि उसे नहीं पता। उसने बताया कि वह मचान पर लड़कों के साथ बैठे अपने भाई को खाना खिलाने जा रही है। उसकी मां कुसुमपुर का रास्ता जानती होगी। वह अभी वापिस आकर मोहन बाबू को अपनी माँ से मिलवा देगी। बालिका उसे माता के पास लेकर गयी। मोहनबाबू उस स्त्री की शोभा एवं गौरवपूर्ण व्यक्तित्व को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए। मोहनबाबू के पूछने पर कि कुसुमपुर की तरफ कौन सा मार्ग जाता है वह स्त्री विचलित हो उठी। उसकी आँखों में आँसू आ गए। यह देखकर मोहन बाबू व्याकुल हो उठे और स्त्री से विनयपूर्वक पूछने लगे कि इसका कारण क्या है। पहले तो वह स्त्री राजी नहीं हुई पर मोहनलाल के बार–बार कहने पर उसने अपने दुख की कहानी सुनाई।

स्त्री ने बताया कि उसके पति इस प्रान्त के मालिक थे और उच्चवंश से सम्बन्ध रखते थे। कुसुमपुर में उनकी प्रधान जमींदारी थी। किसी कारणवश उन्होंने एक बार कुन्दनलाल नामक व्यक्ति से कुछ ऋण लिया और रेहननामा लिखवा लिया। कुछ समय बाद जब उसका पति पैसा लौटाने गया तो कुंदनलाल ने मित्रता दिखाते हुए पैसा न लेकर कह दिया कि कुछ दिन बाद दे देना उसे कोई जल्दी नहीं है। कुछ दिन बाद कुंदनलाल ने बिना उन्हें बताये उन का इलाका बेच दिया। जब उनके पति को पता लगा तो सदमे से उनकी मृत्यु हो गयी। इसके बाद स्त्री ने वह गांव छोड़ दिया। स्त्री ने मोहन से बताया कि अब उसने इस गाँव के जमींदार से कुछ भूमि सामान्य कर पर ली है और उसी से जीविका कमाकर वह अपनी संतान का पालन पोषण कर रही है। स्त्री की कहानी सुनकर मोहन को बहुत दुख हुआ। कुछ देर विश्राम करने के बाद वह वहां से कुसुमपुर की ओर चल पड़े। वह बहुत उदास और दुखी थे क्योंकि जिस कुंदनलाल के अन्याय के कारण उस निरीह स्त्री का पति छिन गया, उसके बच्चों का पिता नहीं रहा और उनकी जमींदारी भी नहीं रही, वह मोहन के ही पिता थे।

इस कहानी का विषय बहुत संक्षिप्त है परन्तु बहुत संवेदनशील है। किसी व्यक्ति के जीवन की व्यथा एवं निराशा को समझकर उसके लिए दुखी होना एक गंभीर स्थिति है। ऐसी स्थिति में हम दूसरों की मदद करने

को तैयार हो जाते हैं। मोहन को स्त्री के साथ सहानुभूति है उसकी दुखद कहानी सुनकर वह व्यथित हो उठता है पर वह कुछ नहीं कर सका क्योंकि वह मजबूर है। एक तरफ एक दुखिया स्त्री है और दूसरी ओर मोहन के पिता। वह ऐसी स्थिति में स्त्री के लिए कुछ भी नहीं कर पाता। वह अपने पिता के अन्याय एवं कुकर्म के लिए बहुत दुखी है पर अवश है। वह स्त्री की दीनता के साथ साथ उसके अभिमान से भी आकर्षित है। दूसरी ओर अपने पिता के कारण स्वयं को अपमानित महसूस कर रहा है।

2. पात्र तथा चरित्र–चित्रण : पात्रों के चरित्र का चित्रण कहानी का एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है जिसके माध्यम से लेखक विषय वस्तु को प्रस्तुत करता है और अपने विचारों को भी प्रस्तुत करता है। इस कहानी में मुख्य पात्र मोहनलाल एवं बालिका की माँ है। कहानी के आरंभ में ही मोहन बाबू का परिचय दे दिया गया है जो अंग्रेजी शासन के अधीन कोई सरकारी नौकरी करता है। उसका व्यक्तित्व भी आकर्षक है और वह रौब वाला है। लेखक के शब्दों में – ''विलायती पिक का वृचिस पहने, बूट चढ़ाए, हंटिग कोट, धानी रंग का साफा, अंग्रेजी हिन्दुस्तानी का महा–उन्नत ललाट–उसकी आभा को बढ़ा रहे हैं'' मोहन इस इलाके में सबको पहचानते है और लोग भी उससे मित्रता रखते हैं। उसकी बातों से स्पष्ट होता है कि वह अच्छे स्वभाव वाला नवयुवक है। रेलगाड़ी के जिस डिब्बे से वह उतरा है उसमें चढ़ती हुई एक महिला को वह बताता है कि वह गल्त डिब्बे में चढ़ रही है ताकि वह परेशानी से बच सके। वह एक इंस्पेक्टर है और इलाके की जाँच–पड़ताल के लिए जा रहा है।

मोहन भावुक प्रवृत्ति का है। गाँव की तरफ जाते हुए वह झूला झूलती हुई स्त्रियों के गीत से प्रभावित होता है। उनके पास जाकर बड़ी शालीनता से बात करता है। वह सरकारी अधिकारी है परन्तु उसमें अहंकार नहीं है। वह पूछता है–''भद्रे। यहाँ से कुसुमपुर कितनी दूर है? और किधर से जाना होगा? गाँव की एक बालिका से वह बड़े संकोच से बात करते हैं क्योंकि वह ग्रामीण लोगों के तौर–तरीकों को समझते हैं। वहां किसी की लड़की से सीधा बात करना ठीक नहीं समझा जाता। उनके पास और कोई उपाय नहीं था तो उन्होंने रूखेपन से पूछा कि कुसुमपुर का रास्ता कौन सा है। मोहन की भव्य मूर्ति को देखकर बालिका सहम जाती है तो वह सहज हो जाता है। वह बालिका के भेलेपन पर मुग्ध हो जाता है और उसे उसकी माँ से मिलवाने को कहता है।

मोहन विनयशील है। वह बालिका की माता को सम्मान–पूर्वक मिलता है उसके सामने झुककर प्रणाम करता है। जब वह कुसुमपुर का नाम सुन कर व्याकुल हो उठती है तो मोहन उससे उसके दुख का कारण पूछता है। वह उस निर्धन दीन स्त्री के दुख का कारण जानना चाहता है। स्त्री के मना करने पर भी वह विनय करता है कि वह उसकी कहानी सुनना चाहता है। फूस की चटाई पर बैठकर उनका दिया शर्बत पीकर वह स्त्री से उसकी कहानी सुनता है। किसी बड़े अधिकारी द्वारा एक गरीब स्त्री के दुख की कथा सुनना उसकी विनयशीलता का प्रमाण है। वह एक शिष्ट व्यक्ति है। अपने पिता की गलत नीतियों को जान कर भी वह चुप रहता है। स्त्री के सामने इस रहस्य को नहीं खोलता कि कुंदनलाल उसके पिता हैं। उसके मुख पर लज्जा और विषाद की रेखाएं उभरती है, वह बहुत दुखी है पर पिता के सम्मान के प्रति सजग है। मोहन का यह व्यवहार उसके सभ्य एवं शिष्ट होने का प्रमाण है। वह हृदय से भावुक और दयालु है पर सामाजिक शिष्टाचार के प्रति जागरूक है। कुल मिलाकर वह अच्छे चरित्र वाला है।

मोहन अपनी ड्यूटी के प्रति भी ईमानदार है। वह अपने कार्य के प्रति सेवाभाव रखता है। स्टेशन मास्टर से बात करते समय वह बेतुकी बातों में समय व्यर्थ नहीं करता। शिक्षित नवयुवक मोहन सभी औपचारिक बातें समझता है। स्टेशन मास्टर से शेकहैंड करके उसे गुडईवनिंग बोलता हुआ सीधा घोड़े पर चढ़कर अपनी ड्यूटी पर रवाना हो जाता है। वर्षा में भीगते हुए वह बिना रूके कुसुमपुर की ओर बढ़ता है जहां उसे कारिन्दों

द्वारा फैलायी गड़बड़ को देखना है। गहरी रात्रि में कुछ पल रूककर वह फिर अपनी मंजिल की ओर बढ़ने लगता है। मोहन के माध्यम से प्रसाद ने एक कर्त्तव्यपरायण, भावुक एवं अनुशासित चरित्र की रूपरेखा हमारे सामने रखी है।

इस कहानी की दूसरी मुख्य पात्र गरीब स्त्री है। इसका व्यक्तित्व अति सुन्दर एवं गरिमापूर्ण है। लेखक के शब्दों में –''एक स्त्री मोहनलाल को दिखाई पड़ी, जिसकी अंगप्रभा स्वर्ण–तुला थी, तेजोमय मुखमंडल तथा ईषत् उन्नत अधर अभिमान से भरे हुए थे।'' पाठक को सहज ही इस बात का ज्ञान हो जाता है कि यह स्त्री रूपवती है। उसकी सरल गंभीर तेजोमय मूर्ति को देखकर मोहनलाल विनयपूर्वक झुककर उसे प्रणाम करता है। इस स्त्री में स्वाभिमान का भाव है। कुसुमपुर का नाम सुन कर उसके नेत्रों में आँसू आ जाते हैं और वह पूरे आत्मसम्मान के साथ अपनी दुख गाथा सुनाती है। पति की जमींदारी समाप्त होने पर वह कुसुमपुर को छोड़ देती है। पति की मृत्यु के के बाद वह दूसरे गाँव के एक नेक जमींदार से कर पर भूमि लेकर अपनी आजीविका कमाती है। उसके हृदय में कुंदनलाल के प्रति घृणा का भाव है। उसका नाम सुन कर उसका चेहरा क्रोध एवं घृणा से लाल हो उठता है। पर वह आत्मविश्वास एवं आत्म–सम्मान के साथ जीने का साहस रखती है। लेखक ने बड़े सुन्दर शब्दों में लिखा है–''कुसुमपुर का नाम सुनते ही स्त्री का मुखमंडल आरक्तिम हो गया और उसके नेत्र से दो बूँद आँसू निकल आए। वे अश्रु करुणा के नहीं, किन्तु अभिमान के थे।''

इस पात्र के माध्यम से प्रसाद ने एक आदर्श भारतीय नारी को प्रस्तुत किया है जो पति के शत्रु के घोर घृणा करती है, पति की जमींदारी समाप्त होने पर और उसकी मृत्यु होने पर एक आदर्श माता के रूप में अपने बच्चों का पालन पोषण करती है। वह मेहनत मजदूरी करके गरीबी में भी आत्म–सम्मान को जीवित रखती है।

इस कहानी के गौण पात्रों में रेलवे स्टेशन का स्टेशन मास्टर, सिग्नलर, मुसाफिर, गाँव की स्त्रियां, पुरुष तथा बच्चे आते हैं। मोहन लाल जब स्त्रियों से कुसुमपुर का रास्ता पूछते हैं तो एक प्रौढ़ा उसके द्वारा कहे गये 'भद्रे' शब्द का अर्थ नहीं समझ पाती पर उसे मार्ग बता देती है। जब वह बालिका से पूछता है तो वह सहम जाती है। प्रसाद ने बड़े स्वाभाविक ढंग से इस स्थिति का वर्णन किया है–''बालिका इस भव्य मूर्ति को देखकर डरी, पर साहस के साथ बोली–मैं नहीं जानती। ऐसे सरल नेत्र–संचालन से इंगित करके उसने ये शब्द कहे कि युवक को क्रोध के स्थान पर हँसी आ गई और कहने लगा–तो जो जानता हो, मुझे बतलाओ मैं उससे पूछ लूँगा।'' बालिका बहुत निरीह है परन्तु माता वाला आत्मविश्वास उसमें भी है।

3. **संवाद** : संवाद, कथोपकथन या वार्तालाप कहानी का महत्त्वपूर्ण अंग है। पात्रों की परस्पर बातचीत से कहानी का स्वरूप स्पष्ट होता है। कहानी में लेखक जो कुछ कहना चाहता है उसे पात्रों के मुँह से ही कहलवाता है। इस कहानी में पात्र बहुत थोड़े हैं और उसी के आधार पर संवादों की संख्या भी कम है। मोहन लाल के संवाद थोड़े हैं। सबसे लम्बा संवाद स्त्री का है जो अपनी कहानी सुना रही है। उसके द्वारा कही बात कहानी की प्रमुख विषय–वस्तु को स्पष्ट करती है और पाठक को मूल कथा का ज्ञान सहज ही हो जाता है। कहानी के संवाद बहुत छोटे हैं पर उनसे कहानी की विषय–वस्तु शीघ्र ही स्पष्ट हो जाती है। जैसे–स्टेशन मास्टर और मोहन लाल के संवाद–

स्टेशन मास्टर – 'आप इस वक्त कहां से आ रहे हैं?' मोहन
मोहन – 'कारिन्दों ने इलाके में बड़ा गड़बड़ मचा रक्खा है, इसलिए मैं कुसुमपुर–जोकि
हमारा इलाका है–इंस्पेकशन के लिए जा रहा हूँ।'
स्टेशन मास्टर – फिर कब पलटिएगा?
मोहन – दो रोज में। अच्छा, गुड इवनिंग।

जब मोहन स्त्रियों के झुंड के पास जाकर कुसुमपुर का रास्ता पूछा तो उसने बहुत शिष्ट भाषा में बात की–'भद्रे! यहां से कुसुमपुर कितनी दूर है? और किधर से जाना होगा।' एक प्रौढ़ महिला उत्तर देती हैं – ''इहाँ से डेढ़ कोस तो बाय, इहै पैंड़वा जाई।'' इस संवाद से स्पष्ट होता है कि मोहन शिक्षित नवयुवक है और महिला गाँव की साधारण अशिक्षित स्त्री है। उसकी भाषा में उस गांव की बोली का प्रयोग है। आगे जाकर जब मोहन बालिका से रास्ता पूछता है तो वह नहीं बता पाती। मोहन कहता है–'तो जो जानता हो, मुझे बतलाओ मैं उससे पूछ लूंगा।' बालिका–'हमारी माता जानती होंगी। चलिए, मैं लिवा चलती हूँ।'

जब बालिका मोहन को माँ के पास ले जाती है तो वह पूछती है–'बेटा! कहां से आते हो?'

मोहन – 'मैं कुसुमपुर जाता था, किन्तु रास्ता भूल गया।'

इसके बाद मोहन को अपने दुख की कहानी सुनाती है। जिससे कथा का पूरा ज्ञान पाठक को हो जाता है। एक जमींदार कुंदनलाल द्वारा किये धोखे के कारण इस स्त्री का संसार उजड़ जाता है। वह करुणामय शब्दों में कहती है–''फिर हमारे पति के ह्रदय में, उस इलाके के इस भांति निकल जाने के कारण, बहुत चोट पहुंची और इसी से उनकी मृत्यु हो गयी।'' महिला के ये संवाद कहानी के मूल विषय को प्रस्तुत करते हैं।

4. **वातावरण** : कहानी में वातावरण या परिवेश का भी महत्व होता है। इस कहानी में ग्रामीण वातावरण का चित्रण है। कहानी एक गांव के रेलवे स्टेशन के वर्णन से शुरू होती है। लेखक ने संध्या के समय का वर्णन किया है जब हल्की वर्षा हो रही है। ऐसे वातावरण में एक रेलगाड़ी स्टेशन पर आती है। इस वातावरण का बड़ा सजीव वर्णन करते हुए लिखा है–

'श्रावण मास की संध्या भी कैसी मनोहारिणी होती है! मेघमाला विभूषित गगन की छाया सघन रसाल–कानन में पड़ रही है। अंधियारी धीरे–धीरे अपना अधिकार पूर्व–गगन में जमाती हुई, सुशासनकारिणी महाराणी के समान, विहंग प्रजागण को सुख–निकेतन में शयन करने की आज्ञा दे रही है......ग्राम्य स्टेशन पर कहीं एक–दो दीपालोक दिखाई पड़ता है।...............बूंदियां धीरे–धीरे गिर रही हैं..................पवन की सनसनाहट के साथ रेलगाड़ी का शब्द सुनाई पड़ने लगा।...........महादैत्य के लाल–लाल नेत्रों के समान अंजन गिरिनिभ इंजन का अग्रस्थित रक्तआलोक दिखाई देने लगा। पागलों की तरह बड़बड़ाती हुई अपनी धुन की पक्की रेलगाड़ी स्टेशन पर पहुंच गई।''

लेखक ने ग्राम क्षेत्र का भी मनोहारी चित्रण का सुमधुर संगीत धीरे–धीरे आम्रकानन में से निकल कर चारों ओर गूंज रहा है। अंधकार गगन में जुगनू–तारे चमक–चमक कर चित्त को चंचल कर रहे हैं। ग्रामीण लोग अपना हल कंधे पर रख कर, बिरहा गाते हुए, बैलों की जोड़ी के साथ, घर की ओर प्रत्यावर्त्तन कर रहे हैं। एक विशाल तरुवर की शाखा में झूला पड़ा हुआ है, उस पर चार महिलाएं बैठी हैं, और पचासों उसको घेरकर गाती हुई घूम रही है। झूले के पेंग के साथ 'अबकी सावन सइयाँ घर रहु रे' की सुरीली पचासों कोकिल–कंठ से निकली हुई तान पशुगणों को भी मोहित कर रही है। बालिकाएं स्वच्छन्द भाव से क्रीड़ा कर रही है।''

ग्रामीण वातावरण का वर्णन करते समय प्रसाद ने ग्रामीण स्त्रियों के सौन्दर्य के भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। उनके शब्दों में – ''बालिका की अवस्था 15 वर्ष की है। आलोक से उसका अंग अंधकार–घन में विद्युल्लखा की तरह चमक रहा है। यद्यपि दरिद्रता ने उसे मलिन कर रखा है पर ईश्वरीय सुषमा उसके कोमल अंग पर अपना निवास किए हुए है।'' बालिका द्वारा मिट्टी के बर्तन से कुछ वस्तु निकाल कर जल में डालना, मोहन का फूस की चटाई पर बैठना आदि ग्रामीण वातावरण को प्रकाशित करते हैं। खेत में बनी मचान पर बालकों को बैठना आदि भी इसी प्रकार के वातावरण को स्पष्ट करते हैं।

5. **भाषा** : प्रसाद अपनी रचनाओं में शुद्ध साहित्यिक एवं संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग करते हैं। इस कहानी की भाषा भी सरल न होकर कलिष्ट है। किसी भी स्थिति का मनोहारी वर्णन करना प्रसाद की

विशेषता है। इस कहानी में एक ओर ग्राम और रेलवे स्टेशन का चित्रण है, दूसरी ओर प्राकृतिक शोभा के चित्रण में सुन्दर भाषा का प्रयोग है – ''बूंदियां धीरे–धीरे गिर रही है, जो जूही की कलियों को आर्द्र करके पवन को भी शीतल कर रही हैं। थोड़े समय में वर्षा बंद हो गयी। अंधकार–रूपी अंजन के अग्रभाग–स्थित आलोक के समान चतुर्दशी की लालिमा को लिए हुए चंद्रदेव प्राची में हरे–हरे तरुवरों की आड़ में से अपनी किरण–प्रभा दिखाने लगे।''

ग्राम के परिवेश का चित्रण बड़ी सुन्दर भाषा का प्रयोग किया है–''बाबू मोहनलाल उसी पगडंडी से चले। चलते–चलते उन्हें भ्रम हो गया, और वह अपनी छावनी का पथ छोड़कर दूसरे मार्ग से जाने लगे। मेघ घिर आए, जल वेग से बरसने लगा, अंधकार और घना हो गया। भटकते–भटकते वह एक खेत के समीप पहुंचे, वहां उस हरे–भरे खेत में एक ऊँचा और बड़ा मचान था, जो कि फूस से छाया हुआ था, और समीप ही में एक छोटा–सा कच्चा मकान था। उस मचान पर बालक और बालिकाएं बैठी हुई कोलाहल मचा रही थी।''

कहानी के मूल विषय को प्रसाद ने बड़ी संक्षिप्त शब्दावली में व्यक्त कर दिया है। स्त्री द्वारा बतायी गयी दुख–गाथा में उन्होंने बड़ी प्रभावपूर्ण एवं अर्थपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है। यह प्रयोग इतना अद्भुत है कि कुछ ही पंक्तियां पढ़कर पाठक कथावस्तु को समझ लेता है। कहानी में आया अंतिम और संक्षिप्त गद्यांश अत्यन्त प्रभावपूर्ण है–

''उनके मुख पर विषाद और लज्जा ने अधिकार कर लिया था। कारण यह था कि स्त्री की जमींदारी हरण करने वाले तथा उसके प्राणप्रिय पति से उसे विच्छेद कराकर इस भांति दुःख देने वाले कुंदनलाल मोहनलाल के ही पिता थे।'' इस तरह की भाषा का प्रयोग करुणा प्रसाद की महत्वपूर्ण विशेषता है। इस कहानी में वर्णनात्मक शैली का सुंदर प्रयोग है।

6. **उद्देश्य :** प्रत्येक रचना पाठक के सामने कोई न कोई संदेश अवश्य रखती है। लेखक का उद्देश्य कथा के माध्यम से पाठक को कोई संदेश देना होता है, तभी उस रचना की उपयोगिता सिद्ध होती है। इस कहानी का मुख्य उद्देश्य ऐसे व्यक्ति की मनोस्थिति को प्रस्तुत करना है जो स्वयं सुशील स्वभाव का है परन्तु पिता द्वारा किए गए अन्याय के कारण उसे लज्जा का अनुभव होता है। मोहनलाल को एक गरीब बालिका और उसकी माता के प्रति सहानुभूति है। वह एक सरकारी अधिकारी होने के नाते इनके परिवार की सहायता भी कर सकता है पर यह जानकर कि इस स्त्री की दुर्दशा का कारण उसका अपना पिता है तो वह पूरी तरह टूट जाता है। कहा जाता है कि माता–पिता के कुकर्मों का फल संतान को भुगतना पड़ता है। मोहनलाल अनुशासित, कर्त्तव्यपरायण एवं परिश्रमी है। उसे गांव के भोले लोगों से लगाव है। वह उनकी रक्षा के लिए उपद्रवी लोगों को ठीक करना चाहता है। रास्ते में एक गरीब स्त्री की व्यथा सुनने के लिए उसकी फूस की चटाई पर बैठ जाता है। उसके मुख से अपने पिता द्वारा किये अन्याय को जानकर वह निराश हो जाता है और विषाद तथा लज्जा से घिर जाता है।

लेखक का उद्देश्य ग्रामीण परिवेश में होने वाले जमीनों के झगड़ों–झमेलों का वर्णन करना भी है। गांव के महाजन धोखे से लोगों की जमीन हड़प लेते हैं जिसके दुष्परिणामों का वर्णन किया गया है। महाजन कुंदनलाल की धोखेबाजी के कारण महिला का घर बर्बाद हो गया और पति की मृत्यु हो गयी। कुंदनलाल की जमींदारी झूठ और फरेब पर चलती है जो दूसरों के साथ अन्याय करता है। उसी का बेटा दयालु स्वभाव का है और पिता का यह गल्त कार्य उसे निराश करता है।

इस कहानी में प्रसाद ने गांव की स्त्रियों के सामान्य गुणों की चर्चा भी की है। रेलवे स्टेशन के दृश्य का वर्णन करते हुए वह लिखते हैं – 'एक स्त्री की ओर देखकर फाटक के बाहर खड़ी हुई दो औरतें–जो उसकी सहेली मालूम देती हैं–रो रही हैं, और वह स्त्री एक मनुष्य के साथ रेल में बैठने को उद्यत है। उनकी क्रंदन–ध्वनि

से वह स्त्री दीन भाव से उनकी ओर देखती हुई, सेकंड कलास की गाड़ी में चढ़ने लगी।'' प्रसाद नारी के प्रति सदैव दयालु भाव रखते हैं। इस कहानी में उन्होंने ग्रामीण स्त्रियों की सादगी को विशेष रूप से उभारा है। ये स्त्रियां मोहनलाल को देखकर घबरा जाती हैं। उनमें से एक प्रौढ़ा स्त्री मोहनलाल द्वारा कहे शब्द 'भद्रे' को समझ नहीं पाती पर उसे लगता है कि यह शब्द परिहास के लिए नहीं है।

कुल मिलाकर यह एक सुन्दर कहानी है। लेखक ने इसका नामकरण 'ग्राम' किया है। कहानी की पूरी कथावस्तु का सम्बन्ध ग्रामीण वातावरण से है—गांव की प्राकृतिक सुन्दरता, छोटा सा रेलवे स्टेशन, अपनी गठरियां संभालते मुसाफिर, खेतों में पड़े झूले और झूला झूलती, गीत गाते स्त्रियां, बिरहा गाते, बैलों की जोड़ी के साथ घर लौटते किसान, मचानों पर खेलते बच्चे, घरों में पड़े मिट्टी के बर्तन, देसी शर्बत, फूस की चटाईयां, फूस मिट्टी के कच्चे घर, मैले वस्त्रों में लिपटी सुन्दर स्त्रियां और जमींदारों के छलकपट आदि सभी विषय ग्रामीण जीवन से संबंध रखते हैं। कहानी को पढ़ते समय ग्राम जीवन पाठकों के सामने सहज ही सजीव हो जाता है। वास्तव में यह एक सुन्दर कहानी है जो पाठक को ग्रामीण परिवेश के प्रति जानकारी देने में सफल कही जा सकती है।

2.4.5 लघु प्रश्नोत्तर :

प्र.1 जयशंकर प्रसाद की किन्हीं चार नाट्य रचनाओं के नाम लिखो।

उत्तर : चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु, ध्रुवस्वामिनी

प्र.2 प्रसाद किस प्रकार के कवि हैं?

उत्तर : छायावादी कवि हैं। जो प्रेम और सौन्दर्य के उपासक, दार्शनिक, गहन विचारक, तत्त्वदर्शी और युग प्रर्वत्तक के रूप में प्रसिद्ध हैं।

प्र.3 कहानी के तत्त्व कौन से हैं?

उत्तर : कथावस्तु, चरित्र चित्रण, संवाद, वातावरण, भाषा शैली, उद्देश्य।

प्र.4 जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी कौन सी है?

उत्तर : 'ग्राम'। इस कहानी में लेखक ने ग्रामीण संस्कृति का वर्णन किया है।

प्र.5 कथावस्तु क्या होती है?

उत्तर : घटनाओं के क्रमिक विकास को कथावस्तु कहते हैं।

6. 'ग्राम' कहानी के प्रमुख पात्र के विषय में लिखें।
7. 'ग्राम' कहानी की कथावस्तु को स्पष्ट करें।
8. संवाद किसे कहते हैं?
9. परिवेश का कहानी में क्या महत्त्व होता है?
10. ग्राम कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट करें।

2.4.6 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. जयशंकर प्रसाद की साहित्यिक विशेषतां लिखें।
2. जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालें।
3. कहानी के तत्वों का परिचय दीजिए।
4. 'ग्राम' कहानी का उद्देश्य बताते हुए सार लिखें।
5. 'ग्राम' कहानी की तात्विक समीक्षा करें।
6. 'ग्राम' कहानी का सार लिखें।
7. 'ग्राम' कहानी के प्रमुख पात्र के विषय में लिखें।

मुंशी प्रेमचन्द : यह मेरी मातृभूमि है

रूपरेखा :

1. लेखक परिचय
2. कहानी का सार
3. उद्देश्य
4. सप्रसंग व्याख्या

1. लेखक परिचय :

उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द्र का जन्म एक गरीब घराने में काशी से चार मील दूर लमही नामक गाँव में 31 जुलाई, 1880 ई0 को हुआ था। इनके पिता अजायबराय थे। इनकी माता का नाम आनंदी देवी था। सात साल की अवस्था में माता का और चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का देहांत हो गया। रोटी कमाने की चिन्ता बहुत जल्दी इनके सिर पर आ पड़ी। ट्यूशन करके इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। इनका विवाह कम उम्र में हो गया था, जो इनके अनुरूप नहीं था। शिवरानी देवी के साथ इन्होंने दूसरा विवाह किया। स्कूल–मास्टरी की नौकरी करते हुए इन्होंने एफ.ए. और बी.ए. पास किया। मुंशी जी बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। जीवन के हर क्षेत्र में ख्याति पा चुके इतने महान् साहित्यकार की मृत्यु 8 अक्तूबर 1936 ई. को हुई।

प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी और उपन्यास की एक ऐसी परंपरा का विकास किया जिसने पूरी शती के हिन्दी साहित्य का मार्गदर्शन किया। प्रेमचंद एक ऐसे साहित्यकार हैं जिनकी रचनाओं का फलक अत्यन्त व्यापक है। इन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा में अपनी पैठ बनाई है, लेकिन एक कहानीकार के रूप में हिन्दी साहित्य में विशेष ख्याति प्राप्त किए हुए हैं। इन्होंने 300 के लगभग कहानियां लिखी हुई हैं। उनकी कहानियों में निम्न व मध्यम वर्ग का चित्रण है। महान कथाकार मुंशी प्रेमचन्द मूलतः सामाजिक कहानीकार थे। कहानी विधा के क्षेत्र में प्रेमचन्द ने एक क्रांतिकारी परिवर्तन की शुरूआत की। प्रेमचंद से पूर्व जो कहानी लिखी जाती थी उनमें मनोरंजन के तत्व होते थे किंतु मुंशी प्रेमचन्द ने सामाजिक समस्याओं को लेकर कहानियां लिखी।

कृतियां :

1. उपन्यास – सेवासदन (1918), वरदान (1921), प्रेमाश्रम (1922), रंगभूमि (1925), कायाकल्प (1926), निर्मला (1927), प्रतिज्ञा (1929), गबन (1931), कर्मभूमि (1933), गोदान (1935), मंगल सूत्र (अपूर्ण) 1936।
2. नाटक – कर्बला, प्रेम की वेदी, संग्राम, रूठी रानी।
3. प्रमुख कहानियां – कफन, पूस की रात, बड़े घर की बेटी, पंच परमेश्वर, बूढ़ी काकी, दो बैलों की कथा, सौत, नमक का दारोगा, परीक्षा, ईदगाह, सज्जनता का दण्ड, बड़े भाई साहब, बूढ़ी काकी, ठाकुर का कुआँ, गुल्ली डंडा।

2. कहानी का सार :

'यह मेरी मातृभूमि है' कहानी प्रेमचंद जी की पहली कहानी है जो उनके स्वदेश प्रेम पर केंद्रित है इस में उन्होंने अपनी मातृभूमि भारत से दूर विदेश में चले गए एक भारतीय की मन की पीड़ा को व्यक्त किया है। कहानी का नायक अपनी युवावस्था में अमेरिका चला गया था और वहाँ अपने परिवार के साथ सुखी जीवन जी रहा था लेकिन वहाँ पर अपना भरा पूरा परिवार और सम्पत्ति छोड़ कर वह भारत चला आता है। जब अमेरिका से भारत अपने गांव लौटता है तो वह फिर यही रहने का संकल्प लेता है, और कहता है कि मैं यह गंगा माता का तट और अपना प्यारा देश छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगा मैं अपनी मिट्टी गंगा जी को ही सौपूंगा। संसार की कोई भी आकांक्षा मुझे मेरी मातृभूमि भारत से दूर नहीं कर सकती, यह मेरा प्यारा देश है। कथावाचक की इच्छा है कि उसके प्राण उसकी मातृभूमि भारत में ही निकले।

विदेश में रहते हुए अपनी संस्कृति से दूर हो जाने के डर से वह अपनी माँ समान मातृभूमि में वापस लौट आने के लिए व्याकुल रहता है। गंगा नदी उसके लिए केवल एक पवित्र नदी न होकर उसकी सांस्कृतिक पहचान का एक अंग है जो कि विदेश में रहने के कारण विस्मृत हो चुकी थी। अपनी मातृभूमि भारत में आकर और गंगा माता की गोद में जाकर उसे असीम खुशी होती है और वह कहता है, हां अब मैं अपने देश में हूँ। यह मेरी प्यारी मातृभूमि है। यह लोग मेरे भाई है और गंगा मेरी माता है।

इस कहानी में प्रेमचंद जी ने एक प्रवासी भारतीय के अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम को व्यक्त किया है और दिखाया है कि कैसे भारत पर पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव पड़ रहा है। जिस समय वह बम्बई में जहाज़ से उतरा तो वह देखता है कि यहाँ पर अंग्रेजी ढंग की दुकानें और यातायात के साधनों की भरमार थी। लोग मातृभाषा को भूल कर टूटी–फूटी अंग्रेजी बोल रहे थे इन सब को देखकर उसकी आँखों में आंसू भर गए। वह कहने लगा यह तो कोई और देश है। प्रेमचंद जी ने इस कहानी के माध्यम से शहरी और ग्रामीण जीवन के अंतर को भी स्पष्ट किया है। निम्न वर्ग की खस्ता हालत की और इशारा किया है और बताया है कि कैसे पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से देश के जन–जीवन में विलासिता बढ़ रही है। कहानी भावपूर्ण है तथा गठी हुई भाषा व चुस्त संवादों के कारण अत्यन्त प्रभावी है।

3. उद्देश्य :

किसी भी रचना का सबसे महत्वपूर्ण तत्व उसका उद्देश्य होता है। इस कहानी का उद्देश्य अपनी मातृभूमि अपने देश और अपनी संस्कृति के प्रति प्रेम को व्यक्त करना है। कहानीकार ने युवा वर्ग में विदेश के प्रति तेज़ी से बढ़ रहे आकर्षण और उसके परिणाम स्वरूप पैदा हुए विषाद और एकाकीपन के भाव को कहानी के नायक के माध्यम से व्यक्त किया है। नायक अपनी मातृभूमि से कट जाता है इस बात का अहसास उसे तब होता है जब वह किसी कारण वश दूर विदेश में चला जाता है। अपने भरे–पूरे और सुखी परिवार के बीच रह कर भी वह अपने आप को एकाकी पाता है। जीवन के आखिरी क्षण वह अपने देश अपनी मातृभूमि में जाकर व्यतीत करना चाहता है। गंगा के किनारे उसने अपनी कुटी बना ली और उसकी इच्छा है कि उसके प्राण यहीं निकलें। पत्नी और पुत्रों के बुलाने पर भी वह अपना देश अपनी मातृभूमि छोड़कर नहीं जाना चाहता।

कुल मिला कर लेखक ने अपनी मातृभूमि अपने देश और अपनी संस्कृति से कट चुके व्यक्ति की मन की स्थिति का वर्णन किया है। यह चित्रण अत्यंत मार्मिक है। मनुष्य को किसी मजबूरी वश अपने देश से दूर जाना पड़ सकता है, लेकिन अपने मूल अपनी जड़ों से, अपनी संस्कृति से वह कभी भी कट नहीं सकता।

4. सप्रसंग व्याख्या :

''अपनी मिट्टी गंगा जी को ही सौपूंगा। अब संसार की कोई आकांक्षा मुझे इस स्थान से नहीं हटा सकती क्योंकि यह मेरा प्यारा देश और यही प्यारी मातृभूमि है। बस मेरी उत्कृष्ट इच्छा यही है कि मैं अपनी प्यारी मातृभूमि में ही अपने प्राण विसर्जन करूँ।''

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियां 'मुंशी प्रेमचन्द' जी द्वारा लिखित कहानी 'यह मेरी मातृभूमि है' में से ली गई हैं। कहानी का नायक 60 वर्ष पहले अपना देश छोड़कर विदशे चला जाता है। लेकिन वहाँ उसे हमेशा अपनी मातृभूमि अपने देश की याद आती रहती है और वह अपना घर परिवार छोड़कर भारत अपने देश चला आता है।

व्याख्या :

अपनी पत्नी और बच्चों के वापस बुलाने पर वह कहता है कि मैं अपना देश और गंगा माता का तट छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। वह कहता है कि मैं अपने प्राण अपनी मातृभूमि अपने देश में ही दूँगा। दुनिया की कोई भी आकांक्षा अब मुझे यहां से जाने के लिए विवश नहीं कर सकती।

पाठ संख्या : 2.7 **लेखक ः डॉ॰ कृष्ण भावुक**

'कछुआ–धर्म'
(पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी)

पाठ की रूपरेखा ः

2.3.0 उद्देश्य
2.3.1 प्रस्तावना
2.3.2 पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व
2.3.3 गुलेरी के प्रमुख निबन्ध
2.3.4 निबन्ध 'कछुआ–धर्म' का सार
2.3.5 निबन्ध 'कछुआ–धर्म' का मन्तव्य अथवा सन्देश
2.3.6 सप्रसंग व्याख्या
2.3.7 कठिन शब्दों के अर्थ
2.3.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.3.0 उद्देश्य ः

2.3.1 प्रस्तावना ः

2.3.2 पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व ः

प्रायः लोग यह जानते हैं कि पं॰ चन्द्रधर शर्मा गुलेरी मात्र एक कहानीकार थे और उनकी विशेष रूप से प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' है। यह कहानी सन् 1915 ई॰ में 'सरस्वती' नामक पत्रिका में पहली बार छपी थी। यह ठीक है कि गुलेरी जी ने अपने जीवन में लिखा तो बहुत कम है, परन्तु वह परिमाण में कम होते हुए भी गुणवत्ता की दृष्टि से अत्यन्त उच्च स्तर का है। वास्तव में उन्होंने काव्य, निबन्ध, जीवनचरित आदि विधाओं के अतिरिक्त संस्मरण और समीक्षापरक साहित्य भी काफ़ी मात्रा में लिखा था, किन्तु अन्यान्य कारणों से वह बहुत वर्षों तक प्रकाशित न हो पाया।

श्री प्रेम पखरोलवी लिखते हैं – "गुलेरी जी की गणना द्विवेदी–युग के प्रख्यात निबन्धकारों में होती है। उनकी ऐसी प्रभावकारी एवं रोचक रचनाएँ 'समालोचक', 'सरस्वती', 'मर्यादा', 'इन्दु', 'प्रतिभा' और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' आदि प्रसिद्ध एवं जनप्रिय पत्रिकाओं में छपा करती थीं।"

गुलेरी जी का प्रथम श्रेष्ठ निबन्ध 'सोऽहम्' सबसे पहले उन्हीं के द्वारा सम्पादित पत्र 'समालोचक' में अगस्त सन् 1903 ई॰ में प्रकाशित हुआ था। आपके अनेक चर्चित निबन्ध, शोधपरक आलेख और टिप्पणियाँ भी उपलब्ध होती हैं।

डॉ॰ मनोहरलाल ने उनकी जन्मशती सन् 1983 ई॰ में उनकी प्रतिनिधि कृतियाँ 'गुलेरी–साहित्यालोक' नाम से प्रकाशित की थीं। उसमें सुधी समीक्षकों के अभिमत भी संकलित किए गए थे। उस बृहद् महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का विमोचन करते हुए मनोवैज्ञानिक कथा–साहित्य के अग्रदूत श्री जैनेन्द्र कुमार ने ये विचार व्यक्त किए थे –

"गुलेरी जी विलक्षण विद्वान् थे। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उनमें ग़ज़ब की ज़िन्दादिली थी और उनकी शैली भी अनोखी है। गुलेरी जी न केवल विद्वत्ता में अपने समकालीन साहित्यकारों से ऊँचे ठहरते हैं, अपितु एक दृष्टि से वह प्रेमचन्द से भी ऊँचे साहित्यकार हैं। प्रेमचन्द ने समसामयिक स्थितियों का चित्रण तो बढ़िया किया है, पर व्यक्ति मानस के चितेरे के रूप में गुलेरी का जोड़ नहीं है। प्रेमचन्द अपने साहित्य में सामाजिक संबंधों के चित्रण से आगे नहीं बढ़े, जबकि गुलेरी ने 'उसने कहा था' में 'मानवतावाद' की आत्मा का स्पर्श कर लिया है। आश्चर्य है कि उनके निधन के इतने वर्ष बाद भी उनकी रचनाएँ प्रामाणिक पाठ के साथ पुस्तक–रूप में नहीं आई आ पाईं। 'गुलेरी–साहित्यालोक' इस दिशा में एक प्रेरक प्रयास कहा जाएगा।"

आगे चल कर सन् 1991 ई॰ में डॉ॰ मनोहरलाल ने ही 'गुलेरी–रचनावली' नामक एक बृहद् ग्रंथ में गुलेरी जी के विभिन्न निबन्धों, लेखों, कहानियों, साक्षात्कारों, संस्मरणों, जीवनचरितों, टिप्पणियों, पत्रों आदि को क्रमवार संकलित किया है। इस ग्रंथ को दो खण्डों में प्रकाशित किया गया है। खण्डों के कुछ शीर्षक इस प्रकार है – कथा/कहानी, निबन्ध/लेख, पुरानी पाण्डुलिपियाँ, संस्मरण, इंटरव्यू, वैदिक और पौराणिक साहित्य, लोक और कला, राजनीति/धर्म, समीक्षाएँ, पुस्तकें, पत्र–पत्रिकाएँ, काव्य, जीवनचरित, पुरानी हिन्दी, भाषा, इतिहास, पुरातत्त्व, विज्ञान, विविध टिप्पणियाँ, पत्र–साहित्य, संस्कृत साहित्य तथा अंग्रेजी साहित्य इत्यादि। ऐसा इसलिए किया गया है, ताकि उनकी तलस्पर्शी गुरु–गम्भीर, बहु–आयामी सृजनशीलता का परिचय हो सके। यही नहीं, प्रत्येक रचना के प्रामाणिक पाठ के साथ उसके प्रथम प्रकाशन का विवरण भी दिया है। गुलेरी जी की यह गद्य–सृष्टि उस समय खड़ीबोली के बन रहे रूप–स्वरूप की प्रामाणिक परिचायिका है।"

डॉ॰ मनोहरलाल ने आगे यह वक्तव्य भी दिया है – "गुलेरी जी को कहानीकार के अतिरिक्त निबन्धकार के रूप में जो प्रतिष्ठा मिली है, उसका आधार उनके व्यक्तिव्यंजक निबन्ध 'कछुआ धर्म' और 'मारेसि मोहिं कुठाँव' प्रमुख हैं। ये निबन्ध सन् 1919 और 1920 ई॰ में 'प्रतिभा' (पत्र) में 'कण्ठा छद्म' नाम से छपे थे। इनसे पहले उनके दो निबन्ध 'काशी' तथा 'काशी के नूपुर और काशी की नींद' क्रमशः 'समालोचक' (1906) तथा 'भारतमित्र' (1916) में छप चुके थे, जिन पर आलोचकों की नज़र प्रायः नहीं पड़ी। ये निबन्ध उनकी भावात्मक शैली के द्योतक हैं।"

वास्तव में गुलेरी जी के इन निबन्धों से उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य और बहुपठन का ही प्रमाण मिलता है। श्री प्रेम पखरोलवी अपने पूर्वोक्त लेख में लिखते हैं – "वे प्रत्यक्षतः व्यावहारिक जीव थे।.....अनुसंधान की ललक एवं खोज की चाहत आपके निबन्धों में बराबर देखी जा सकती है। गुलेरी जी के आलेख लालित्यपूर्ण हैं...और लेखन की मूल संवेदना मानवीय भाईचारे एवं करुणा को छूती है।"

निधन ः इनका निधन सन् 1922 ई॰ में हुआ था।

2.3.3 गुलेरी के प्रमुख निबन्ध ः

जयपुर से अपने संपादन में निकलने वाले 'समालोचक' नामक पत्र के द्वारा गुलेरी जी ने जिन निबन्धों का प्रकाशन किया, उनके विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की यह महत्त्वपूर्ण टिप्पणी द्रष्टव्य है – "ऐसा गंभीर और पांडित्यपूर्ण हास, जैसा इनके लेखों में रहता था, और कहीं देखने में न आया। अनेक गूढ़ शास्त्रीय विषयों तथा कथा–प्रसंगों की ओर विनोदपूर्ण संकेत करती हुई उनकी वाणी चलती थी। इसी प्रसंगगर्भत्व (एल्यूसिवनेस) के कारण इनकी चुटकियों का आनन्द अनेक विषयों की जानकारी रखने वाले पाठकों को ही विशेष मिलता था। इनके व्याकरण ऐसे रूखे विषय के लेख भी मज़ाक से ख़ाली नहीं होते थे। यह बेधड़क कहा जा सकता है कि शैली की जो विशिष्टता और अर्थगर्भित वक्रता गुलेरी जी में मिलती है और किसी लेखक में नहीं। इनके स्मित हास की सामग्री ज्ञान के विविध क्षेत्रों से ली गई है। अतः इनके लेखों का पूरा आनन्द उन्हीं को मिल सकता है, जो बहुज्ञ या कम–से–कम बहुश्रुत हैं।" गुलेरी जी की अनेक रचनाएँ सन् 1903 से ले कर 1922 ई॰ तक के मध्य ही प्रकाशित हुई थीं। इनके प्रसिद्ध निबन्धों में से ये नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे हैं – सुदर्शन की दृष्टि, इण्डियन नेशनल कांग्रेस, आँख, वेद में पृथ्वी की गति, वंशच्छेद, ब्रह्मदेवता, विक्रमोर्वशी की मूल कथा, संगीत की धुन, काशी, समालोचना–प्रसंग, धर्मपरायण रीछ, जयसिंहप्रकाश, अमंगल के स्थान पर मंगल शब्द, कछुआ धर्म, जालहंस की सुभाषित मुक्तावली, आत्मघात, देवकुल, पाणिनि की कविता, न्याय–घण्टा, पुरानी पगड़ी तथा पुरानी हिन्दी इत्यादि। इन सबमें 'संगीत की धुन' शीर्षक निबन्ध वस्तुतः निबन्ध से कहीं अधिक एक भेंट–वार्त्ता या साक्षात्कार ही है। सन् 1905 में गुलेरी जी ने अंग्रेज़ी में संगीत–अंकन–पद्धति के अनुसार हिन्दी में ठीक वैसी ही पद्धति के आविष्कर्त्ता भारत के महान् संगीतज्ञ श्री विष्णुपन्त दिगम्बर प्लुस्कर के साथ अपनी यह भेंट–वार्त्ता छापी थी। कहते हैं कि हिन्दी साहित्य में इसी रचना से 'साक्षात्कार' नामक गद्य–विधा का श्रीगणेश हुआ था।

गुलेरी जी के निबन्धों के संबंध में डॉ॰ विद्याधर शर्मा गुलेरी 'भाषा' पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख में यह वक्तव्य देते हैं – "यूँ तो पंडित जी के निबन्धों की संख्या सौ के क़रीब है, परन्तु उनके केवल 25–26 निबन्धों का प्रकाशन ही नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 'गुलेरी–ग्रंथ' के अन्तर्गत कर पाई है। 'पुरानी हिन्दी' शीर्षक से गुलेरी जी के कई निबन्ध 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के भाग दो में प्रकाशित हुए थे, जिनमें से शौरसेनी, पैशाची, अपभ्रंश, शारंगधर–पद्धति से उद्धृत प्रकरण प्रमुख हैं। प्रसिद्ध जैन आचार्य मेरुतुंग का 'प्रबन्ध–चिन्तामणि', जो सं॰ 1361 में लिखा गया था, पर गुलेरी जी ने विद्वत्तापूर्ण व्याख्याएँ लिखीं। पुराने हिन्दी कवि राजा मुंज के कर्तृत्व को वे ही स्वयं प्रकाश में लाए।"

आगे लिखते हैं – "खड़ीबोली, जिसे गुलेरी जी मलेच्छ भाषा का नाम देते हैं, के अध्ययन में उन्होंने भूषण कविराज की 'शिवा बावनी' पर मुसलमानी प्रभाव को स्वीकारा है।"

गुलेरी जी ने हेमचन्द्र की व्याकरणयुक्त रचना पर भी बहुत अधिक लिखा था। हेमचन्द्र के व्याकरण के वे एक अधिकारी विद्वान् माने जाते थे। वे ही इस व्याकरण का अधिकांश भाग 'पुरानी हिन्दी' नामक ग्रंथ के माध्यम से प्रकाश में लाए। उन्होंने अनेक सत्य तथ्य उस ग्रंथ में उद्घाटित किये थे। सौ–से–भी–अधिक अवतरणों एवं पाण्डित्यपूर्ण विवेचन से यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी किस प्रकार पारंपरिक और सार्वदेशिक भाषा का स्थान ग्रहण करती हुई आगे बढ़ी। इसके समन्वय के लिए उन्होंने स्थान–स्थान पर प्रान्तीय भाषाओं, विशेषतः ब्रजभाषा के सर्वमान्य रूपों, प्रयोगों आदि के शब्द–प्रतिशब्द उदाहरण भी बराबर दिए हैं। हिन्दी भाषा की सार्वदेशिक राष्ट्रीय प्रवृत्ति और प्रकृति का अनुशीलन करने के लिए यह प्रबन्ध बड़े काम का माना जाता है।

डॉ॰ विद्याधर गुलेरी जी लिखते हैं – "सन् 1904 से ले कर सन् 1917 ई॰ तक का समय गुलेरी जी के जीवन में विशेष महत्त्व रखता है। इसी समय में उन्होंने विशेष अध्ययन किया व सौ से ऊपर लेख लिखे, जिनके फलस्वरूप वे पुरातत्त्व, भाषा–तत्त्व, प्राचीन इतिहास, संस्कृत, वैदिक संस्कृत, पालि तथा प्राकृत के सर्वश्रेष्ठ विद्वानों में गिने जाने लगे।"

गुलेरी जी की वास्तविक प्रतिभा का उत्कर्ष द्विवेदी–युग के अन्य समकालीन निबन्धकारों की तुलना में सहज ही आँका जा सकता है। इनके निबन्धों को उनकी विषयगत व्यापकता और विविधता के कारण किसी एक विशिष्ट कोटि में सीमित करके परखना प्रायः असंभव ही प्रतीत होता है।

गुलेरी जी पुरातत्व के मान्य विद्वान् थे, किन्तु कहानी और निबन्ध के क्षेत्र में उनका स्थान अन्यतम है। उन्होंने संस्कृत के विद्वान् होते हुए भी अपने निबन्धों को व्यावहारिक एवं सरल बनाया है। विषयानुकूल भाषा को परिवर्तित करना इनको अभीष्ट था, साथ ही छोटे–छोटे एवं स्पष्ट वाक्यों का प्रयोग आपने निबन्धों में मिलता है। मुहावरों का भी प्रयोग मिलता है। उर्दू तथा अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग इन्होंने बिना किसी संकोच के किया है। इनके निबन्धों की शैली प्रायः तत्सम–प्रधान है। गुलेरी जी के निबन्धों में 'कछुआ धर्म' और 'मारेसि मोहि कुठाँव' दोनों बहुचर्चित निबन्ध हैं। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ देखिए –

"बकौल शेक्सपीयर जो मेरा धन छीनता है, वह कूड़ा चुराता है, पर जो मेरा नाम चुराता है वह सितम ढाता है। आर्य समाज ने मर्मस्थल पर वह मार की है कि कुछ कहा नहीं जाता। हमारी ऐसी चोटी पकड़ी है कि सर नीचा कर दिया। ग़ैरों ने तो गाँठ का कुछ नहीं दिया, पर इन्होंने तो छोटे–छोटे शब्द छीन लिये। इसी से कहता हूँ कि 'मारसि मोहि कुठाँव' अच्छे–अच्छे पद तो यों सफ़ाई के लिए हैं कि इस पुरानी जमी हुई दुकान का दिवाला ही निकल गया।"

इस प्रकार गुलेरी जी एक सशक्त और सफल निबन्धकार के रूप में उभर कर हमारे सामने आते हैं। विषयों की विविधता के अतिरिक्त उनके निबन्धों में भारतीय और पश्चिमी निबन्ध–रचना की शैलियों का भी समन्वय पाया जाता है। जिस प्रकार उनकी अछूती कहानी 'उसने कहा था' में सबसे पहली बार हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान और मनोवैज्ञानिक कथा–साहित्य की बाद में लोकप्रिय होने वाली चेतनाप्रवाह–पद्धति और पूर्वदीप्ति–पद्धति का स्पष्ट प्रयोग हुआ है, ठीक उसी प्रकार निबन्धगत शैली में भी नवीनता और मौलिकता के अनेक आयामों का भी सूत्रपात देखा जा सकता है।

निष्कर्ष : पं॰ चन्द्रधर शर्मा गुलेरी एक कहानीकार के अतिरिक्त कवि, जीवनीचरितकार, संस्मरण–लेखक और साक्षात्कार जैसी सशक्त गद्य–विधा के आविष्कर्त्ता के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। एक सफल और सशक्त कहानीकार के बाद उनकी साहित्यिक देन को एक मौलिक निबन्धकार के रूप में अवश्य रेखांकित किया जा सकता है। उन्होंने 'निबन्ध' नामक साहित्यिक विधा को अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य, ज्ञान और कलात्मकता से लैस करके हिन्दी साहित्य में खड़ीबोली के उद्‌भव–काल में विशेष योगदान किया है।

2.3.4 निबन्ध 'कछुआ–धर्म' का सार ः

भारतीय सभ्यता मूलतः एक नम्रता–प्रधान सभ्यता रही है। हमने अपने आप में सिमट जाना सीखा है। जिस प्रकार एक कछुआ अपने ऊपर वार होने पर अपनी गर्दन अपनी ढाल में ही छिपा लेता है और मारने वाले पर आगे बढ़ कर कभी भी वार नहीं करता है, इसी प्रकार भारतवासियों ने भी कठिनाइयों का मुक़ाबला करने की अपेक्षा ख़ामोश रह कर स्वयं मिट जाना ही बेहतर समझा है। भारतीयों की इसी प्रकृति को पं॰ चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने **कछुआ–धर्म** कहा है।

'मनुस्मृति' में कहा गया है कि जहाँ गुरु की निन्दा हो रही हो अथवा कोई झूठी कथा हो रही हो, वहाँ पर भले आदमी को चाहिए कि वह या तो अपने कान बन्द कर ले अथवा वहाँ से उठ कर चल दे। मनु जी ने यह उपाय नहीं बताया है कि निन्दा करने वाले का जूते या मुक्के से जबड़ा तोड़ दो, ताकि वह आइन्दा ऐसी हरकत न करे। इसी 'कछुआ–धर्म' का यह परिणाम हुआ कि आर्यों के भारत पर आक्रमण करने के समय भारतीय लोग भाग खड़े हुए। यह नहीं हुआ कि वे डट कर उनका मुक़ाबला करते। इसी प्रकार पुराने आर्यों की अपने भाई असुरों से अनबन हो गई। असुर लोग असीरिया में रहना चाहते थे और आर्य लोग सदा सप्तसिंधु प्रदेश में ही बसना चाहते थे। इसके परिणामस्वरूप आर्य लोग आगे चल दिए। विष्णु और उसके साथी ऊखल, मूसल और सोम को कूटने का पत्थर लिए मूँज़वत् हिन्दुकुश के एक मात्र दर्रा ख़ैबर से होते हुए सिन्धु घाटी में पहुँच गए और भारत की हरी–भरी धरती पर ये बुलबुलों के समान चहकने लगे, किन्तु आर्यों को ईरान के अँगूरों का चस्का पड़ा हुआ था और साथ ही गूलों अर्थात् मूँज़वत् पहाड़ की सोमलता का चस्का पड़ा हुआ था। सोमलता लेने जाते, तो गन्धर्व उन्हें मारने दौड़ते। हाँ, कुछ गन्धर्व लालच में आ कर चमकता नक़द–नारायण ले कर 'सोमलता' बेचने को तैयार हो जाते। उस समय का सिक्का गौएँ थीं। कुछ समय बाद कुछ लोग, जो सीमा पर रहते थे, यहाँ पर सोम बेचने चले आते और कोई आर्य जन सीमा–प्रान्त पर जा कर भी ले आया करते थे, लेकिन मोल ठहराने में उन्हें बड़ी हुज्जत होती थी। गन्धर्वों ने आर्यों की कमज़ोरी का लाभ उठा कर सोम की क़ीमत बढ़ा दी। सफ़र लम्बा हो गया। रास्ते में डाके मारने वाले 'वाल्हीक' आ बसे। अतः सोम मिलने में कठिनाइयाँ आने लगीं। तब यह तो हुआ कि आर्यों ने सोमरस के स्थान पर पूतिक लकड़ी का ही रस पीना शुरु कर दिया, किन्तु यह किसी को नहीं सूझा कि यहाँ की उपजाऊ भूमि में ही सोम की खेती कर ली जाए। बाद में जब पंचनद (सिन्धु प्रान्त) में 'वाल्हीक' आ कर बस गए, तो दण्ड–कमण्डल लेकर ऋषि जन वहाँ से भाग खड़े हुये।

इधर बहुत वर्ष पीछे समुद्र पार के देशों में दूसरे धर्म पक्के हो चले। वे लूटते थे, मारते थे और बेधर्म भी कर देते थे। इन लोगों के परिणामस्वरूप भारतीयों ने अपनी समुद्र–यात्रा बन्द कर दी। पुर्तगाली यहाँ व्यापार करने आये थे, किन्तु उन्हें अपने धर्म का प्रचार करने की बात भी सूझी। भारतीयों की कछुआ–प्रवृत्ति को महसूस कर उन्होंने ऐसे अनेक तरीक़े ढूँढ निकाले, जिनसे भारतीयों को सरलता से अपने धर्म मे खींच लिया जाए। एक तरीक़ा यह था कि पादरी लोग यह कह देते कि उन्होंने जल पीने और नहाने वाले कुओं में 'अभक्ष्य' (हड्डी, माँस इत्यादि अखाद्य पदार्थ) डाल दिया है। बस फिर क्या था, गाँव के लोग पानी छोड़ कर ईसाई हो गए। किसी ने यह नहीं सोचा कि कुल्ले ही कर लें, घड़े फोड़ दें या कै ही कर डालें। जिसने भी ऐसे कुएँ का पानी पिया, वह 'हिन्दू' नहीं रहा, थक–हार कर ईसाई बन जाता। बम्बई जाने में भी प्रायश्चित्त कर दिया गया।

इसी कछुआ–धर्म का यह नतीजा हुआ कि यदि हिन्दू को यह कह दिया गया कि विलायती खाँड (चीनी) में हड्डी इत्यादि पड़ती है, तो वह चीनी ही खाना छोड़ देता। यह नहीं कि गन्ने की खेती बढ़ाए और अपने देश की दशा सुधारे। यदि फिर भी यह कहा जाए कि देशी खाँड बेचने वाले भी वही उपाय करते हैं, तो हिन्दू मैली खाँड खाने लगेगा और यदि यह कह दिया जाए कि मैली खाँड सस्ती जावा या मोरिस की खाँड है, तो वह गुड़ पर ही उतर आएगा और अन्त में मीठा खाना ही छोड़ देगा। यह न सोचेगा कि मीठे के बिना उससे भला कब तक रहा जायेगा ? उसका कछुआ–धर्म कछुआ भगवान् की तरह पीठ पर 'मंदराचल' की मथनी चला कर समुद्र से नये–नये रत्न निकालने के लिए नहीं है, वह तो ढाल के भीतर और भी सिकुड़ जाने के लिए है।

वास्तव में मानव मात्र का ही यह स्वभाव है कि वह दैहिक, दैविक और भौतिक तीन प्रकार के दुःख होने पर उन्हें मिटाने के उपाय किया करता है। बौद्धों ने जीवन मात्र को ही समस्त दुखों की जड़

घोषित करके प्रार्थनाएँ करनी शुरू कर दीं।

निबन्ध के अन्त में लेखक पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जीवन के प्रति भारतीयों की ऐसी वैराग्य–भरी ग्लानि पर विस्मय व्यक्त करते हैं। वे यह चुटकी लेते हैं कि सौ या उससे भी अधिक वर्ष जीने का लक्ष्य रख कर चलने वाले भारतीय तो कृषि के बिना ही फ़सलें पक जाने और देश के पत्ते–पत्ते में मधु मिलने में आस्था रखते हैं। उन्हें ऐसा वैराग्य कदापि शोभा नहीं देता है।

2.3.5 निबन्ध 'कछुआ–धर्म' का मन्तव्य अथवा सन्देश ः

भारतेन्दु–काल के प्रायः सभी हिन्दी लेखक समाज के दोषों को एक–एक कर समाज के सामने उघाड़ने का सफल प्रयत्न करते थे। समाज की दुर्बलताओं, समाज में प्रचलित कुरीतियों को देखने और उनको साधारण जनता में प्रस्तुत करने का एक सामान्य लक्ष्य उस काल के हिन्दी–लेखकों के सामने था। गुलेरी जी ने भी अपने इस लेख में व्यंग्यपूर्ण शैली में भारतीयों की संकीर्णता, अनुदारता तथा अपने को बदलती परिस्थितियों के अनुसार न ढालने की दुर्बलता पर चिन्ता व्यक्त की है। उन्हें इस बात का दुःख है कि हम किसी भी संकट या बाहरी विपत्ति का सामना करने की क्षमता नहीं रखते हैं। संकट या समस्या से सदा भागने की प्रवृत्ति हमारी सीमाओं को बहुत ही छोटा किये जा रही है। हममें अत्याचारी का सामना करने का बल नहीं रहा है। हम धर्म–सम्बन्धी संकीर्णता में बँध का अपने बन्धुओं को खोते जा रहे हैं। धर्म–विधर्म, भक्ष्य–अभक्ष्य के चक्कर में पड़ कर हम सब अपनी मूल शक्ति को ही खोते जा रहे हैं।

इस लेख का मुख्य उद्देश्य देशवासियों को अपनी गिरती हुई दशा के प्रति सचेत करना और सदैव पीछे हटने की कायरतापूर्ण रक्षात्मक (Defensive) प्रवृत्ति को छोड़ कर आगे बढ़ना और आक्रमण करने वाले पर पहले चोट करने का स्वभाव बनाने की प्रेरणा देना है। उस समय के साथ–साथ आज की परिस्थितियों में भी इस लेख का सर्वाधिक महत्त्व है।

एक आलोचक के शब्दों में – "उनका अभिप्राय सोई हुई जाति को एक कचोट दे कर अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध जगाना था। खिल्ली के बीच में जो एक गहरी टीस है, उसे अनुभूत करने के बाद ही गुलेरी जी के इस प्रयास की महत्ता समझ में आती है।"

भाषा पर लेखक का अपूर्व अधिकार है। इसी से गाम्भीर्य, व्यंग्य, विनोद, पाण्डित्य और चुलबुलापन एक साथ अत्यन्त प्रभावी ढँग से प्रस्तुत किये गये हैं। *'तीन लम्बे डग भरने वाले विष्णु ने पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा और न जम कर मैदान लिया।' 'ये दमड़ीमल के पोते करोड़ीचन्द', 'मोल ठहराने में बड़ी हुज्जत होती थी, जैसे कि तरकारियों का भाव ठहराने में कुँजड़ियों से हुआ करती है'* इत्यादि अनेकानेक उदाहरण इस निबन्ध में भरे पड़े हैं।

निबन्धकार के मतानुसार आत्मरक्षात्मक (Offensive) नीति अपनाने के कारण ही भारतीय जन आक्रामक नीति के पोषक विदेशियों की राजनीतिक चालों से सदैव मुँह की खाते रहे हैं। सो, आज (पराधीनता–काल में) हमे आक्रामक पद्धति और नीति अपना कर अंग्रेज़ों को मुँह–तोड़ जवाब देना सीखना चाहिए।

यद्यपि पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी अहिंसा, प्रेम, शान्ति और सत्य जैसे गांधीवादी विचारों में पूर्ण आस्था रखते थे, तथापि देश की तत्कालीन स्थितियों में वे 'अहिंसा' को कायरता का लक्षण मान कर महाकवि 'दिनकर' के खण्ड–काव्य 'कुरुक्षेत्र' में रेखांकित कथ्य न्यायार्थ युद्ध का समर्थन भी करते प्रतीत होते हैं। इसका कारण यह है कि 'कछुआ–धर्म' और शुतुरमुर्गी नीति अपना कर एक पराधीन देश कभी भी स्वदेश

की धरती पर अनधिकृत रूप से जमे बैठे अंग्रेज़ जैसे विदेशियों को देश से बाहर नहीं खदेड़ सकता है। सो, न्याय–प्राप्ति के लिए गुलेरी जी भारतीयों को पुराना **'कछुआ–धर्म'** छोड़ कर आक्रामक ढँग अपनाने की एक सार्थक प्रेरणा देते हैं। यह जन–जागरण करना ही इस निबन्ध का प्रमुख उद्देश्य और सन्देश बन पड़ा है।

2.3.6 सप्रसंग व्याख्या ः

"भला जिस देश में बरस में दो ही महीने घूम–फिर सकते हों और समुद्र की मछलियाँ मार कर नमक लगा कर सुखा कर रखना पड़े कि दस महीने शीत और अँधियारे में क्या खायेंगे, वहाँ जीवन में इतनी ग्लानि हो तो समझ में आ सकती है, पर जहाँ राम के राज में 'अकृष्टपच्या पृथ्वी' पुटके–पुटके मधु' बिना खेती फ़सलें पक जायें और पत्ते–पत्ते में शहद मिले, वहाँ इतना वैराग्य क्यों ?"

– (**'निबन्ध–परिवेश'**, पृष्ठ 50)

प्रसंग ः निबन्धकार पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी 'कछुआ–धर्म' नामक निबन्ध के अन्त में भारतीयों की जीवन के प्रति उदासीनता पर अपना दुःख प्रकट करते हैं। दुखों से छुटकारा पाने के अनेक उपाय भारत में समय–समय पर सोचे गए। डरपोक क़िस्म के लोगों ने जीवन को सारे दुखों का परिणाम समझ कर यह निष्कर्ष निकाला कि चोर को मारने की बजाय चोर की माँ को ही मारना चाहिए, अर्थात् मनुष्य को यह चोला ही नहीं मिलना चाहिए। यह बात उस देश के लोगों ने सोची, जहाँ एक समय सौ वर्ष जीने की इच्छा लोग करते थे। इसके आगे लेखक ये शब्द कहता है –

व्याख्या ः जिस देश में साल भर में केवल दो महीने लोग घूम सकें और जिन्हें समुद्र की मछलियों को नमक लगा कर, सुखा कर सर्दी और अँधियारे के इस महीनों में खाने के लिए रखना पड़े, उस देश के लोग यदि जीवन के निराश हो कर वैराग्य की बातें करें, तो उसे उचित कहा जा सकता है, किन्तु जिस भारत में बिना खेती के ही फ़सलें पक जाती हों और पत्ते–पत्ते से शहद मिलता हो, उस देश में वैराग्य का क्या काम ? इन पंक्तियों में भारतीयों की वैराग्य–भावना पर दुःख और आश्चर्य प्रकट किया गया है। भारत एक ऐसा देश है, जहाँ न तो अन्न की कमी है और न ही मधुरता की। ऐसे देश के लोग भी यदि जीवन से निराश हो कर जन्म को कोसें, तो बड़े दुःख की बात है। ऐसा तो उस देश के लोग सोचते हैं, जहाँ एक साल में दस महीने वर्षा या तीखी सर्दी के कारण लोग घूम–फिर न सकते हों और लोगों को दस महीने तक भोजन की चिन्ता रहती हो।

2.3.7 कठिन शब्दों के अर्थ ः

भ्रातृव्यस्य वधाय	=	छोटे भाई को मारने के लिए।
सजातानां मध्यमेष्ठयाय	=	भाइयों के विनाश के लिये।
शतगु, सहस्रगु, नवग्वाः, दशश्वाः	=	सौ गाय/हज़ार गाय/नौ गाय/दस गाय रखने वाला।
पापो हि सोमविक्रयो	=	सोमरस का बेचना पाप है।
न तत्र...गमिष्यति	=	यहाँ दिन भर न ठहरें। युगंधर (प्रदेश या स्थान) में पानी पीने वाला भला स्वर्ग में कैसे जायेगा।
मा देहि...निवासम्	=	हे राम ! आप मुझे गर्भवास न दें।

ज्ञातवेत्थं...जनाः = समझदार लोग ऐसा जान कर फिर माँ के गर्भ को प्राप्त नहीं होते।

2.3.8 अभ्यास के लिए प्रश्न ः

1. पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दीजिए।
2. निबन्ध 'कछुआ–धर्म' का सार लिखिए।
3. निबन्ध 'कछुआ–धर्म' का उद्देश्य लिखिए।
4. अग्रलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

(क) मनुस्मृति में कहा गया है कि जहाँ गुरु की निन्दा या असत्–कथा हो रही हो, वहाँ पर भले आदमी को चाहिए कि कान बंद कर ले या और कहीं उठ कर चला जाए। यह हिन्दुओं के या हिन्दुस्तानी सभ्यता के कछुआ–धर्म का आदर्श है। ध्यान रहे कि मनु महाराज ने न सुनने योग्य की कलंक–कथा के सुनने के पाप से बचने के दो ही उपाय बताये हैं। या तो कान ढक कर बैठ जाओ या दुम दबा कर चल दो। तीसरा उपाय, जो और देशों के सौ में नब्बे आदमियों को ऐसे अवसर पर पहले सूझेगा, वह मनु ने नहीं बताया कि जूता ले कर या मुक्का तान कर सामने खड़े हो जाओ, निन्दा करने वाले का जबड़ा तोड़ दो या मुँह पिचका दो कि फिर ऐसी हरकत न करे। यह हमारी सभ्यता के भाव के विरुद्ध है।

(ख) कछुआ ढाल में घुस जाता है, आगे बढ़ कर मार नहीं करता। अश्वघोष महाकवि ने बुद्ध के साथ चले जाते हुए साधु पुरुषों को यह उपमा दी है – 'देशादनार्यैरभिमूयमानान्महर्षयो धर्ममिवापयान्तम्।' अनार्य लोग देश पर चढ़ाई कर रहे हैं। धर्म भाग जा रहा है। महर्षि भी उसके पीछे–पीछे चले जा रहे हैं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी : साहित्य का महत्व

रूपरेखा

1. लेखक परिचय
2. निबंध का सार
3. उद्देश्य
4. सप्रसंग व्याख्या

जीवन-परिचय : हिन्दी साहित्य के अमर कलाकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1864 ई० (सं० 1921 व०) में उत्तरप्रदेश के रायबरेली जिले के दौलतपुर नामक गाँव में हुआ था। इनके पता पं. रामसहाय द्विवेदी थे, जो सेना में नौकरी करते थे। आर्थिक दशा अत्यन्त दयनीय थी। इस कारण पढ़ने–लिखने की उचित व्यवस्था नहीं हो सकी। प्रारंम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई। द्विवेदी जी पढ़ाई छोड़कर बम्बई चले गये। वहाँ तार का काम सीखा। तत्पश्चात् जी.आई.पी. रेलवे में 22 रु. मासिक की नौकरी कर ली। अपने कठोर परिश्रम तथा ईमानदारी के कारण इनकी निरन्तर पदोन्नति होती गयी। धीरे–धीरे ये 150 रु. मासिक पाने वाले हैड क्लर्क बन गये। नौकरी करते हुए भी अपने अध्ययन जारी रखा। संस्कृत, अंग्रेजी तथा मराठी का भी इन्होंने गहरा ज्ञान प्राप्त कर लिया। उर्दू और गुजराती में भी अच्छी गति हो गयी। बम्बई से इनका तबादला झाँसी हो गया। द्विवेदी जी स्वाभिमानी व्यक्ति थे। अचानक एक अधिकारी से झगड़ा हो जाने पर नौकरी से इस्तीफा देकर इलाहाबाद चले आए। 1903 ई० में सरस्वती नामक पत्रिका का संपादन कार्य सँभाला। यहीं से उनकी बहुमूल्य हिन्दी सेवा शुरू

हुई। उन्होंने खड़ीबोली हिन्दी को गद्य तथा काव्य की भाषा बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। सरस्वती पत्रिका ऐसी चमकी कि बड़े–बड़े लेखक अपनी रचनाएँ छपाने को इज्जत की बात समझने लगे। द्विवेदी जी ने सभी तरह के विषय को साहित्य में अपनाया और जीवन के आदर्श को बढ़ावा दिया। तभी हिन्दी गद्य की अनेक विधाओं का विकास हुआ। इसके पश्चात् आजीवन हिन्दी साहित्य की सेवा में लगे रहे।

द्विवेदी जी का व्यक्तित्व और कृतित्व, दोनों ही इतने प्रभावपूर्ण थे कि उस युग के सभी साहित्यकारों पर उनका प्रभाव था। वे युग–प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। हिन्दी साहित्य में वह युग (द्विवेदी युग) नाम से प्रसिद्ध हुआ। सन् 1938 ई० (पौष कृष्णा 30 सं० 1995 व०) में यह महान् साहित्यकार जगत् को शोकमग्न छोड़कर परलोक सिधार गए।

रचनाएं :

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति, कालिदास और उनकी निबंधकारता, विचार–विमर्श, विज्ञान वार्ता, साहित्य सीकर, निबंधकारता कलाप, काव्य मंजूषा, स्वाधीनता, जल चिकित्सा, हिन्दी भाषा की उत्पति, सम्पत्ति शास्त्र, रसज्ञ रंजन, अतीत स्मृति, साहित्य सन्दर्भ, अद्‌भुत आलाप, महिलामोद, साहित्यालाप, वज्ञ विनोद, दृश्य दर्शन, साहित्य सीकर, विज्ञान वार्ता, संकलन, विचार–विमर्श, रघुवंश, हिन्दी महाभारत, कुमारसम्भव, बेकन, विचारमाला, गंगा लहरी, विनय–विनोद, मेघदूत आदि।

महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक परिचय

साहित्य का विकास–सन् 1903 ई० में द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन का कार्यभार सम्भाला। इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य की जो सेवाएँ कीं, उन्हें भुलाया नहीं जा सकता। इसमें द्विवेदी जी के आलोचनात्मक निबन्ध प्रकाशित होते थे, जिनमें उस समय के लेखकों, निबंधकारों तथा उनकी कृतियों की कटु आलोचना होती थी। इस प्रकार उन्होंने एक ओर तो आलोचना की नींव डाली तथा दूसरी ओर निबंधकारों और लेखकों को व्याकरणसम्मत शुद्ध हिन्दी लिखने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने नवीन छन्दों की ओर निबंधकारों का ध्यान दिलाया तथा लेखकों को लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रकार द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य का सर्वांगीण विकास तथा भाषा का संस्कार किया। वे एक भावुक निबंधकार, कुशल लेखक, योग्य सम्पादक, महान् आचार्य तथा श्रेष्ठ समाज–सुधारक सब कुछ थे। अपनी बहुमुखी प्रतिभा के बल पर उन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य का सर्वतोन्मुखी विकास किया। उन्हीं के प्रयत्नों से हिन्दी में जीवनी, यात्रा वृतान्त, कहानी, उपन्यास, समालोचना, व्याकरण कोष, अर्थशास्त्र, पुरातत्व विज्ञान, कार्यकुशलता और साहित्य सेवाओं से प्रसन्न होकर आपको नागरी प्रचारिणी सभा ने ''आचार्य'' की पदवी से तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'विद्या वाचस्पति' की पदवी से विभूषित किया था।

साहित्य की महत्ता का सार

इस निबंध में निबंधकार यह बताना चाहता है कि कैसे साहित्य हमारे जीवन को एक नयी दिशा दे कर उसे विकास की राह पर चलाने का काम करता है। साहित्य के माध्यम से विचारों में निखार आता है। साहित्य एक शस्त्र का काम करता है। साहित्य के प्रभाव से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि बदलाव होते हैं। ज्ञान–राशि के संचित कोष का ही नाम साहित्य है। सभी तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी, यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती तो वह रूपवती भिखारिनी की तरह, कदापि आदरणीय नहीं हो सकती। उसकी शोभा, उसकी श्री–सम्पन्नता, उसकी ज्ञान–मर्यादा, उसके साहित्य पर ही अवलम्बित रहती है। जाति–विशेष के उत्कर्षापकर्ष का, उसके उच्च–नीच भावों का, उसके धार्मिक विचारों और सामाजिक संगठन का, उसके ऐतिहासिक घटनाचक्रों और राजनीतिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब देखने को यदि कहीं मल सकता है तो उसके साहित्यिक–ग्रंथों में ही मल सकता है।

साहित्य और समाज - निबंधकार साहित्य का महत्व बताते हुए कहता है कि सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक आसक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एकमात्र साहित्य है। जिस जाति–विशेष में साहित्य का अभाव या उसकी न्यूनता आपको देख पड़े, आप यह निःसन्देह निश्चित समझिए कि वह जाति असभ्य किंवा अपूर्ण सभ्य है। जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है, उसका साहित्य भी वैसा ही होता है। जातियों की क्षमता और सजीवता यदि कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिलती है तो उसके साहित्य–रूपी आईने ही में मल सकती है। इस आईने के सामने जाते ही हमें यह तत्काल मालूम हो जाता है कि अमुक जाति की जीवनी–शक्ति इस समय कितनी या कैसी है और भूतकाल में कितनी और कैसी थी।

साहित्य की उपयोगिता–निबंधकार कहता है कि मनुष्य को जीवंतम रहने के लिए भोजन की जरूरत होती है, वैसे ही मस्तिष्क के विकास के लिए साहित्य की जरूरत होती है। अगर आप भोजन करना बन्द कर दे या कम कर दे तो आपका शरीर क्षीण हो जायेगा और अचिरात् नाशोन्मुख होने लगेगा। इसी तरह आप साहित्य के रसास्वादन से अपने मस्तिष्क को वंचित कर दे तो, वह निष्क्रिय होकर धीरे–धीरे किसी काम का न रहेगा। बात यह है कि शरीर के जिस अंग का जो काम है, वह उससे यदि न लिया जाये तो उसकी वह काम करने की शक्ति नष्ट हुए बिना नहीं रहती। जैसे शरीर का खाद्य पदार्थ भोजन है और वैसे ही मस्तिष्क का खाद्य पदार्थ साहित्य है। यदि हम अपने मस्तिष्क को निष्क्रिय और कालान्तर में निर्जीव नहीं करना चाहते तो हमें साहित्य का सतत सेवन करना चाहिए और उसमें नवीनता तथा पौष्टिकता लाने के लिए उसका उत्पादन भी करते जाना चाहिए। याद रखिए, यदि किसी भी प्रकार का गलत भोजन से जैसे शरीर रुग्ण होकर बिगड़ जाता है, उसी तरह वकृत साहित्य से मस्तिष्क भी वकारग्रस्त होकर रोगी हो जाता है। मस्तिष्क का बलवान् और शक्ति–सम्पन्न होना अच्छे ही साहित्य पर निर्भर है। यह बात निर्धान्त है कि मस्तिष्क के सही विकास का एकमात्र साधन अच्छा साहित्य है। यदि हमें जीवंत रहना है और सभ्यता की दौड़ में अन्य जातियों की बराबरी करनी है, तो हमें श्रमपूर्वक, बड़े उत्साह से, सत्साहित्य का उत्पादन और प्राचीन साहित्य की रक्षा करनी चाहिए और यदि हम अपने मानसिक जीवन की हत्या करके अपनी वर्तमान दयनीय दशा में पड़ा रहना ही अच्छा समझते हों तो आज ही इस साहित्य–सम्मेलन के आडम्बर का विसर्जन कर देना चाहिए। आँख उठाकर जरा और देशों तथा और जातियों की ओर देखे कि कैसे साहित्य ने वहाँ की सामाजिक और राजकीय स्थितियों में कैसे–कैसे परिवर्तन कर डाले हैं, साहित्य ने वहाँ के समाज की दशा कुछ कर दी है; शासन–प्रबन्ध में बड़े–बड़े उथल–पुथल कर डाले हैं; यहाँ तक कि अनुदान और अधार्मिक भावों को भी जड़ से उखाड़ फेंका है। साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है वह तोप, तलवार और बम के गोलों में भी नहीं पाई जाती। योरप में हानिकारिणी धार्मिक रूढ़ियों का उत्पादन साहित्य ही ने किया है; जातीय स्वातन्त्र्य के बीज उसी ने बोये हैं; व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के बीज उसी ने बोये हैं; व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के भावों को भी उसी ने पाला, पोसा और बढ़ाया है; पतित देशों का उत्थान भी उसी ने किया है।

साहित्य की शक्ति–निबंधकार साहित्य की अपार शक्ति की बात करते हुए कहते कि साहित्य में इतनी शक्ति है, जो मुर्दो को भी जिन्दा करने वाली संजीवनी औषधि का कार्य करता है, जो साहित्य पतितों को उठाने वाला और उत्थितों के मस्तिक को उन्नत करने वाला है उसके उत्पादन और संवर्ध्दन की चेष्टा जो लोग नहीं करते, वह अज्ञान के अंधकार में पड़े रहकर किसी दिन अपना अस्तित्व ही खो बैठते है। जो मनुष्य इतने महत्वशाली साहित्य की सेवा और अभिवृद्ध नहीं करता अथवा उससे प्रेम नहीं रखता, वह समाजद्रोही है, देशद्रोही है, और जातिद्रोही है। कभी–कभी कोई समृद्ध भाषा अपने ऐश्वर्य के बल पर दूसरी भाषाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेती है, जैसा कि जर्मनी, रूस और इटली आदि देशों की भाषाओं पर फ्रेंच भाषा का बहुत समय तक प्रभाव रहा था। स्वयं अंग्रेजी भाषा भी फ्रेंच और लैटिन भाषाओं के दबाव से नहीं बच सकी। कभी–कभी यह दशा राजनैतिक प्रभुत्व के कारण भी उपस्थित हो जाती है। साहित्य का उत्पादन यदि बन्द हो जाता है तो उसकी वृद्ध की गति मन्द पड़ जाती है। पर यह अस्वाभाविक दबाव सदा नहीं बना रहता। इस प्रकार की दबी या अधःपतित

भाषाएँ बोलने वाले जब होश में आते हैं तब वे इस अनैस र्गक आच्छादन को दूर फेंक देते हैं। जर्मनी, रूस, इटली और स्वयं इंग्लैंड चिरकाल तक फ्रेंच और लेटिन भाषाओं के मायाजाल में फंसे थे। मगर उस जाल को उन्होंने तोड़ डाला। अब वे अपनी भाषा के साहित्य की अभिवृद्ध करते हैं; कभी भूल कर भी विदेशी भाषाओं में ग्रन्थ–रचना करने का विचार तक नहीं करते। बात यह है कि अपनी भाषा का साहित्य ही स्वजाति और स्वदेश की उन्नति का साधक है। विदेशी भाषा का चूडान्त ज्ञान प्राप्त कर लेने और उसमें महत्वपूर्ण ग्रन्थ–रचना पर भी विशेष सफलता नहीं प्राप्त हो सकती और अपने देश को विशेष लाभ नहीं पहुँच सकता। अपनी माँ को निःसहाय, निरुपाय और निर्धन दशा में छोड़ कर जो मनुष्य दूसरे की माँ की सेवा में लगा होता है तो उसे इस अधर्म की कृतघ्नता का क्या प्रायश्चित होना चाहिए, इसका निर्णय कोई मनु, याज्ञवल्क्य या आपस्तम्ब ही कर सकता है।

उद्देश्य :

निबंधकार कहता है कि मेरा यह मतलब कदापि नहीं कि विदेशी भाषायें सीखनी ही नहीं चाहिए। आवश्यकता, अवसर और अवकाश होने पर हमें एक नहीं, बल्कि अनेक भाषाएँ सीखकर ज्ञानार्जन करना चाहिए। किसी भी भाषा से या कहीं से भी ज्ञान मिलता हो तो उसे ग्रहण कर ही लेना चाहिए। परन्तु अपनी ही भाषा और उसी के साहित्य को प्रधानता देनी चाहिए, क्योंकि अपना, अपने देश का, अपनी जाति का उपकार और कल्याण अपनी ही भाषा के साहित्य की उन्नति से हो सकता है। ज्ञान, विज्ञान, धर्म और राजनीति की भाषा सदैव लोकभाषा ही होनी चाहिए। अतएव अपनी भाषा के साहित्य की सेवा और अभिवृद्ध करना, सभी दृष्टियों से, हमारा परम धर्म है।

सप्रसंग व्याख्या :

1. साहित्य ने, साहित्य ने..........................उन्नत करने वाला है।

सप्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ निबंधकार महावीर प्रसाद द्विवेदी जी द्धारा रचित निबंध साहित्य की महत्ता से लिया गया है। इस में निबंधकार साहित्य की अपार शक्ति का गुणगान करता है कि साहित्य व्यक्ति को जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है।

व्याख्या : निबंधकार कहता है कि साहित्य में इतनी शक्ति है कि वह किसी मरे हुए व्यक्ति के लिए एक संजीवनी बूटी का काम करता है। मनुष्य के विचारों में नयी ऊर्जा का विकास करता है। मनुष्य के अंदर साहस, संवेदनशीलता को भरने का काम करता है। साहित्य ही मनुष्य को उन्नति के मार्ग पर चलने के योग्य बनाता है।

2. जर्मनी, रूस..मन्द पड़ जाती है।

सप्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ निबंधकार महावीर प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा रचित निबंध साहित्य की महत्ता से लिया गया है। इसमें निबंधकार ने राजनीतिक, भाषा आदि प्रभावों को प्रस्तुत किया है।

व्याख्या : निबंधकार का मानना है कि जैसे जर्मनी, रूस और इटली जैसे देशों पर फ्रांस भाषा का प्रभाव बहुत समय तक रहा। राजनीतिक स्थिति या हालातों की वजह से भी परिवर्तन होने लगते हैं। साहित्य के माध्यम से राजनीतिक स्थिति पर व्यंग्य किए जाते हैं ताकि बिगड़ रही स्थिति को सुधार में लाया जा सके। अगर साहित्य का उत्पादन ही न हो तो उसके विकास की गति धीमी पड़ जाती है। उसका विकास रूक जाता है।

3. भाषाएं सीखकर...लोकभाषा हो।

सप्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ निबंधकार महावीर प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा रचित निबंध साहित्य की महत्ता से लिया गया है। इसमें निबंधकार ने मात्रभाषा के माध्यम से साहित्य की उन्नति की बात की है।

व्याख्या : निबंधकार कहता है कि अगर हमें अवसर मिले तो बहुत सारी भाषाओं को सीखकर ज्ञान में वृद्धि करनी

चाहिए। ज्ञान प्राप्ति के लिए हमें ज्ञान चाहे कहीं से भी मिले उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। लेकिन साहित्य के रूप में अपनी मात्रभाषा को प्रमुखता देनी चाहिए क्योंकि अपना, अपने देश, जाति का कल्याण अपनी ही भाषा के साहित्य की उन्नति से होता है। ज्ञान, धर्म और राजनीति की भाषा सदा लोकभाषा ही होनी चाहिए क्योंकि साहित्य लोकहित की बात करता है।